ISSN N : 2278-6392

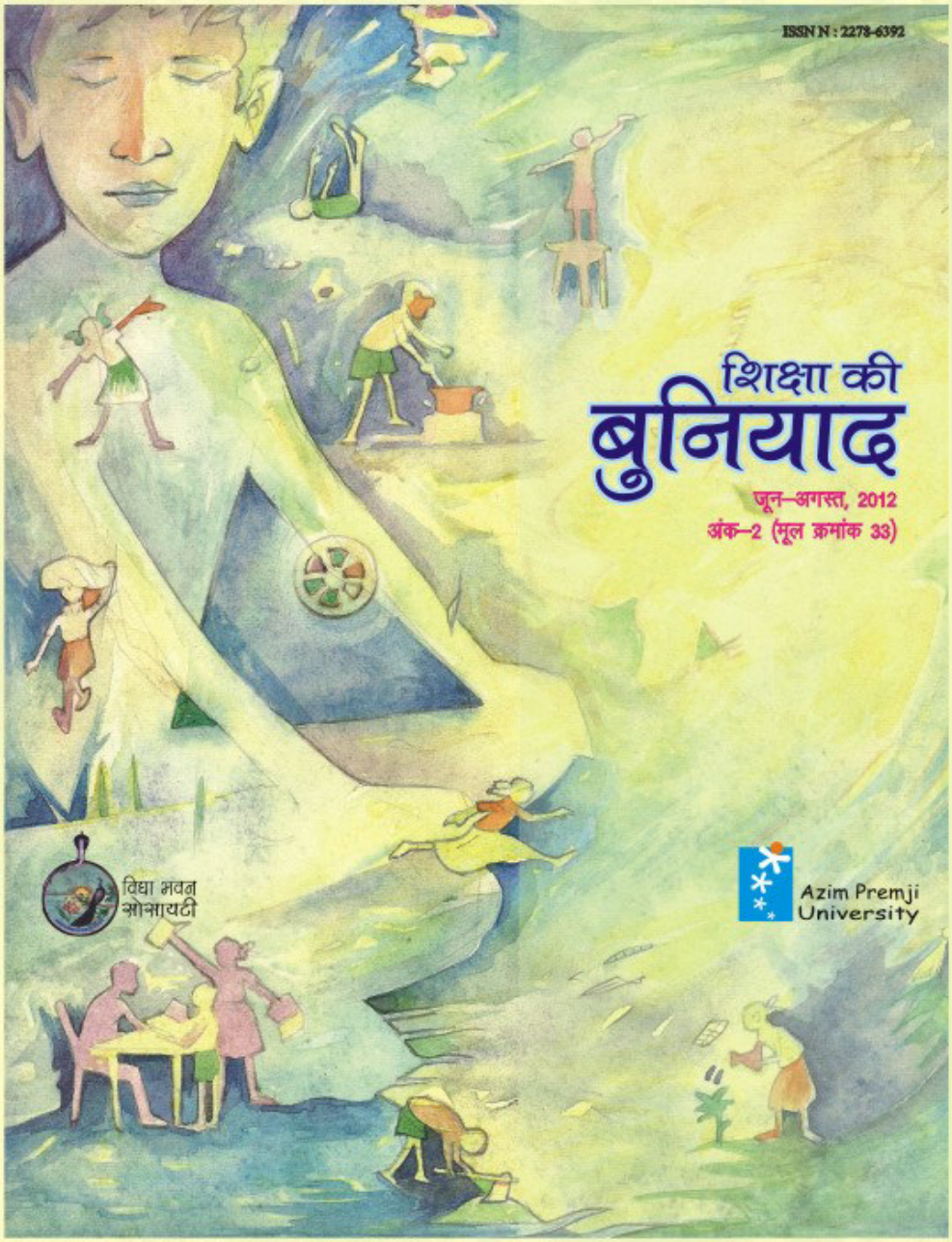

शिक्षा की बुनियाद

जून–अगस्त, 2012
अंक–2 (मूल क्रमांक 33)

विद्या भवन सोसायटी

Azim Premji University

विद्या भवन सोसायटी

शिक्षा की बुनियाद

Azim Premji University

जून–अगस्त, 2012

अंक–2

परामर्श–प्रबन्धन
ह्रदय कांत दीवान
गिरिधर एस.

संपादन प्रभारी
भाग चन्द कुमावत

संपादक मण्डल
गुरबचन सिंह
के.आर. शर्मा
कमलेश जोशी
गिरीश शर्मा
रजनी द्विवेदी

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कवर एवं ले–आउट
इसरार अहमद
मो. इकराम

टाइपिंग सहयोग
शाकिर अहमद

स्वामी
विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

इस अंक में...

1 संपादकीय

2 बुनियादी तालीम को जमीं पर उतारने का एक जतन
प्रशाली देसाई

7 विद्या भवन में बुनियादी शिक्षा : एक अध्ययन
रजनी द्विवेदी

14 बीजारोपण
मार्जरी साइक्स

20 नई तालीम का नया संकल्प
शिवदत्त

24 परीक्षा
रान हैलन

26 गांधी का कर्मबोध
किशोर संत

31 टिकाऊ विकास में नई तालीम की भूमिका
महेश नारायण दीक्षित

34 बदलाव की चिंगारी
अनुराग बेहार

38 बच्चों के शिक्षा अधिकार का मकड़जाल
जॉन कुरियन

41 बुनियादी तालीम क्या है
रामनन्द चौधरी

43 ...जब बच्चों ने प्रयोग किया
शहनाज सी.के.

44 आकाश दर्शन
गिरीश शर्मा

इस अंक की सहयोग राशि– व्यक्तिगत डाक/कुरियर खर्च सहित : ₹50/–, वार्षिक– ₹200/– तथा संस्था हेतु वार्षिक सहयोग राशि ₹400/–
चैक/ड्राफ्ट/एम.ओ. – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

प्रकाशक : विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर और अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बैंगलूरू
मुद्रण : चंचल प्रिंटर्स, 71, महिला मंडल स्कूल के पास, मुखर्जी चौक, उदयपुर 313001

संपादकीय

'शिक्षा की बुनियाद' का मुख्य मक़सद गांधीजी की बुनियादी शिक्षा या नई तालीम को आज के संदर्भ में परिभाषित करते हुए उसके विमर्श को आगे बढ़ाना है। इस परिप्रेक्ष्य में यह समझना ज़रूरी है कि वर्तमान शिक्षा की चुनौतियां क्या हैं और आज के संदर्भ में शिक्षा की नीतियों को लेकर, कक्षा में किस तरह के बदलाव की ज़रुरत हैं।

इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित कुछ लेखों पर गौर किया जा सकता है। मार्जोरी साइक्स की किताब के अंश 'बीजारोपण' में गांधीजी की नई तालीम के परिप्रेक्ष्य में उनके द्वारा दक्षिण अफ्रीका के टॉलस्टाय फार्म में किए गए प्रयोग का जिक्र किया है। इस आलेख में कुछ बातें उभरती हैं। उन्होंने बच्चों की शिक्षा मातृ भाषा में प्रदान करने की बात कही है, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, भारत जैसे बहुभाषी देश में, बच्चों की स्थानीय भाषा के कक्षा में उपयोग तक जाती है और उनकी अस्मिता से जुड़ती है। इसे हम अपने दूर–दराज के आदिवासी अंचलों के स्कूलों से जोड़कर भी देख सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में हम कक्षा में कैसे काम करें तथा हमारे पास किस तरह की सामग्री हो, इस पर हमें सोचने की ज़रुरत है। उन्होंने शिक्षा में बच्चों के अनुभवों को तरज़ीह देने पर भी ज़ोर दिया है और इस बात को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में बहुत विस्तार से कहा गया है। बच्चों का कक्षा शिक्षण, उनके स्थानीय ज्ञान से कैसे जुड़े, यह कक्षा का हिस्सा कैसे बनें और इसके लिए पाठ्य पुस्तकें कैसी हों, पर विचार पर विचार कर सकते हैं।

पत्रिका में उदयपुर के बुनियादी मदरसे की केस स्टडी में, पाठ्यचर्या के अनुभवों को साझा किया गया है। इसमें इस बात का जिक्र किया गया है कि गांधीजी अनुभव आधारित शिक्षा की बात करते हैं, तो उसके लिए पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें व शिक्षक कैसे हों? इस पर आज राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए शिक्षक के पेशेवर विकास व शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में बदलाव के प्रयासों को देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बुनियादी शिक्षा के विचार को आज के संदर्भ में समझने एवं उस पर काम करने की ज़रूरत है। सार्थक शिक्षा के रूप में बुनियादी तालीम के विचार को, इस पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़ाया जा सकता है।

पत्रिका के इस अंक में बुनियादी तालीम के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। आशा करते हैं, पाठकों को बुनियादी शिक्षा पर अपनी समझ बनाने का मौका मिलेगा।

हमें पत्रिका की सामग्री पर आपके सुझाव व प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा, ताकि इसके स्वरूप को निखारने में हमें मदद मिले।

संपादक मंडल

बुनियादी शिक्षा को ज़मी पर उतारने का एक जतन

प्रक्षाली देसाई

मध्यप्रदेश की पश्चिमी भाग में सटे राजस्थान व गुजरात राज्य की हदों से, लगे आदिवासी बहुल ज़िले झाबुआ के पेटलावद तहसील में सन् 1986 में 'संपर्क' संस्थान की स्थापना हुई थी। यहां के अनेक गांव ऐसे हैं, जो वास्तविक विकास से कोसों दूर हैं। तक़रीबन 90 गांवों में संपर्क संस्था कार्य कर रही है। सार्थक शिक्षा इस संस्था का एक प्रमुख मुद्दा है। शुरुआत के 10 वर्षों तक 'संपर्क' के द्वारा कुछ गांवों में अनौपचारिक शिक्षा केंद्र संचालित होते रहे और आज भी 8 गांवों में काम कर रहे हैं। इस संस्थान ने सन् 2004 में एक बुनियादी शाला की शुरुआत की थी। बुनियादी शाला में सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं को इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है।

आदिवासी बहुल झाबुआ जिले की पटेलावद तहसील में शिक्षा एवं सामाजिक कार्यों में संलग्न संपर्क संस्था ने विद्या भवन बुनियादी मदरसे (उदयपुर) से प्रेरित होकर गांधीजी की बुनियादी तालीम को आज के संदर्भ में सन् 2004 में आवासीय बुनियादी शाला की शुरुआत की। इस संपर्क बुनियादी शाला में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे–बच्चियां पढ़ती हैं। फ़ीस के रूप में प्रति बच्चा या बच्ची 145 किलोग्राम गेहूं या मक्का और 10 किग्रा. दाल व 1500 रु. सालाना फ़ीस ली जाती है। इस बुनियादी शाला की काफ़ी जवाबदेही समुदाय ने ले रखी है। बालकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपयोग शाला, संपर्क संस्था व समाज द्वारा समय समय पर होता रहता है। संपर्क की इस बुनियादी शाला में बच्चों के लिए खेती, कौशल उन्नति कारक कार्य, श्रमदान, जड़ी–बूटी एकत्रीकरण एवं कंप्यूटर शिक्षा आदि की गतिविधियों का आयोजन होता है।

खेती संबंधी गतिविधि : खेती संबंधी कार्य बालकों की उम्र व कक्षा के अनुरूप तय किए गए हैं। संस्था की ज़मीन में एक अमरूद का बगीचा है, तो एक जगह पर मौसमी फ़सल बोई जाती है। यह खेती की ज़मीन नदी के किनारे स्थित है। इस खेती में फ़सलों को बोने और उन्हें पानी पिलाने, निराई–गुड़ाई करने, खाद तैयार करने और देशी किटाणुनाशक दवाइयां बनाने आदि के

कामों में बच्चों का जुड़ाव रहता है। इस गतिविधि में छोटी कक्षा (पहली व दूसरी) के बालक फूल, पत्तियां, बीज, कंकड़–पत्थर आदि का एकत्रीकरण, समूहीकरण, वर्गीकरण, पैटर्न बनाना और गीली मिट्टी से अक्षर और अंक बनाना सीखते हैं। ये बच्चे कंकड़–पत्थर की 10–10 ढेरियां बनाकर गिनती करना सीखते हैं। खेती में कक्षा पांच तक के बच्चे पौधों के आसपास पानी जमा रहे, इसके लिए छोटी क्यारियां बनाने, और निराई–गुड़ाई करने का काम सीखते हैं। इसी तरह कक्षा तीसरी–चौथी के बालक स्कूल परिसर में कितने पौधे, कितने वृक्ष लगे हैं, उसकी सूची बनाते हैं और उनके बारे में कक्षा पांचवीं के बच्चों के साथ बैठकर पेड़–पौधों को लगाने का मौसम, उनका फलना–फूलना, और उनका औषधीय महत्व आदि के आधार पर वर्गीकरण कर चर्चा करते हैं। बच्चे पेड़–पौधों पर लगने वाले कीड़े, अन्य जंतुओं का भी जैवकीय आधार पर वर्गीकरण करते हैं। खाद के लिए बच्चों के द्वारा कंपोस्ट का गड्डा तैयार किया जाता है। संस्था की मेस के जैविक कचरे को भी उसी गड्डे में डाला जाता है। यह सब कार्य करते समय शिक्षक बच्चों के साथ खेती संबंधी कार्य करता है। इस संदर्भ में सार्थक प्रश्नों का पूछना, कार्यकारण संबंधी बातचीत करना, मौसम, फ़सल–चक्र, पौधे का स्वरूप, फूल–पत्तियों की बनावट, जड़ व तना और फल का बनना आदि पर वैज्ञानिक आधार पर चर्चा होती है। हानिकारक व लाभदायक कीट, उनका जीवन चक्र, पोषण कड़ी, हवा, पानी, बारिश, मिट्टी आदि के बारे में बातचीत व प्रयोग किए जाते हैं। इसी तरह खेत की लंबाई–चौड़ाई नापना, क्षेत्रफल, कोण, विभिन्न आकार की आकृतियां, सममिति, त्रिकोण, आयत, वर्गाकार, आदि की समझ बनाई जाती है। बच्चे फ़सल की नापतौल, क्रय–विक्रय, लाभ–हानि आदि ज्ञात करना सीखते हैं। अपने देश में यह फ़सल की खेती कहां कहां होती है? कौन से राज्य में कौन सी फसल होती है? कौन सी फ़सल या सब्ज़ियां हमारे लिए कितनी पोषक हो सकती हैं? आदि पर बातचीत होती है। पेटलावद क्षेत्र के बच्चे और शिक्षक एक ही समुदाय के हैं। यहां की बुनियादी शाला में आने से पहले बच्चों के पास अपने बड़े–बुजुर्ग से सुने हुए क़िस्से और कहानियों के साथ उनके पास ख़ुद करके देखा हुआ, खेती का अनुभव भी होता है, जिसका आपस में आदान–प्रदान होता है। कोई भी गतिविधि करते समय बातचीत करने के दौरान स्थानीय भीली व हिंदी भाषा का उपयोग होता है।

कौशल उन्नतिकारक कार्य

(1) **मोमबत्ती बनाना** : इस बुनियादी शाला में मोमबत्ती बनाने के लिए कच्चे माल की ख़रीद की जाती है। इसके लिए शिक्षक के साथ एक या दो बच्चे जाते हैं। कच्चा माल शाला में लाने के बाद उसके 1 किग्रा. के पैकेट तैयार किए जाते हैं, जो बालक ही करते हैं। इस दौरान नाप–तौल व गणित संबंधित सवाल शिक्षक तैयार करता है। बच्चे

कॉपी–पेन लेकर सवाल करते हैं। 1 किलोग्राम से कितनी मोमबत्तियां बनेंगी, एक मोमबत्ती का वज़न कितना होगा। अगर एक मोमबत्ती का वजन 50 ग्राम है, तो 500 ग्राम से कितनी मोमबत्ती बनेगी, यह पहले अंदाज़ लगाया जाता है। बच्चे शिक्षक से सवाल लेते हैं और उनका हल खोजते हैं।

बच्चों के द्वारा तैयार मोमबत्तियां बिकती हैं, तो उसका हिसाब भी बच्चों की ज़िम्मेदारी में रहता है। बनी हुई मोमबत्ती को बच्चे जलाकर देखते हैं कि कहीं मोम में बुलबुले तो नहीं रहे। मोमबत्ती की गुणवत्ता बिगड़े नहीं, उसका ध्यान रखा जाता है। शिक्षक बच्चों के साथ चर्चा करता है– मोमबत्ती जब जलती है, तो इसमें क्या जलता, धागा या मोम या कुछ और? क्या मोमबत्ती का जलना एक रासायनिक प्रक्रिया है, इस पर बातचीत की जाती है। प्रकृति में मोम जैसा पदार्थ कहां–कहां से मिलता है, आदि पर चर्चा की जाती है।

चिमनियां जलाने में हमारे यहां के आदिवासी समाज में वर्षों से केरोसिन का उपयोग किया जाता रहा है। किंतु केरोसिन को प्राप्त करने के लिए लोगों को दिनभर कतार में खड़ा रहना पड़ता हैं, जिसमें समय ख़राब होता है और उनके खेती के काम भी रुक जाते हैं। क्योंकि यहां के अंदरूनी गांव के लोगों को, क़सबों की शासकीय उचित मूल्य की दूकान तक आना पड़ता है। इसके मुक़ाबले मोमबत्तियां उनके लिए एक सस्ता विकल्प है। समाज में बुनियादी शाला के इस उत्पाद का असर हमने बच्चों के द्वारा जाना।

(2) **चॉक बनाना** : चॉक बनाने की गतिविधि में बच्चों के द्वारा बनाए गए चॉक का इस्तेमाल शाला में होता है। इस गतिविधि में बच्चे कच्चा माल यानी चॉक बनाने के पाउडर को नापते–तौलते हैं, घोल बनाते हैं, चॉक बनाने के लिए सांचे साफ़ करते हैं। पाउडर में क्या मिला है। प्रकृति में कैल्शियम कहां से प्राप्त किया जा सकता है? चूने के पत्थरों की खदान हमारे देश में कहां–कहां है? हमारे शरीर में कैल्शियम की मात्रा सबसे ज़्यादा कहां है? हड्डियां कमज़ोर क्यों हो जाती हैं? कैल्शियम की कमी से हमारे शरीर में कौन–कौन सी बीमारियां हो जाती हैं? आदि मसलों पर बच्चों के साथ चर्चा की जाती है। चॉक के एक सांचे में 50 चॉक बनते हैं, उसके लिए कितना घोल तैयार करना पड़ेगा? यह कितने रुपये का होगा? आदि सवाल तैयार किए जाते हैं। इनसे बच्चे जोड़–घटाव, गुणा–भाग जैसी गणितीय संक्रियाएं बहुत आसानी से सीखते हैं।

(3) **वॉशिंग पाउडर** : वाशिंग पाउण्डर बनाने के कार्य के दौरान, बच्चों के साथ चर्चा की जाती है कि कास्टिक सोडा क्या होता है। अम्ल और क्षार क्या है, रोज़ बरोज़ के जीवन में अम्ल और क्षार कहां–कहां इस्तेमाल किए जाते हैं, पर शिक्षक के साथ बच्चे खोजबीन और चर्चा करते हैं। वाशिंग पाउडर से कपड़े साफ क्यों हो जाते हैं या इसमें ऐसा क्या होता है कि कपड़े साफ़ धुलते है, वॉशिंग पाउडर बनाने की गतिविधि में इन सब

वैज्ञानिक तथ्यों के बारे में बच्चों के साथ बातचीत की जाती है। तैयार किए वॉशिंग पाउडर का बच्चे अपने घर पर इस्तेमाल करते हैं।

(4) **मार्बल पेंटिंग के ग्रीटिंग कार्ड बनाना** : इस गतिविधि में बच्चे ड्राइंग शीट लेकर नाप के अनुसार उसको छोटे–छोटे टुकड़ों में काटते हैं। काग़ज़ के इन टुकड़ों के ऊपर तैलीय रंगों के द्वारा पेंटिंग करते हैं। इस गतिविधि में बच्चों के तीन से चार समूह बना लिए जाते हैं। हर एक समूह के पास पानी से भरी एक तगारी और तीन से चार रंग की डिब्बियां होती हैं। तगारी के पानी पर रंगों के छींटे मारकर उसे थोड़ा–सा ब्रश द्वारा गोल घुमा लिया जाता है। पानी के ऊपर काग़ज़ की शीट रखने पर पानी में बनी रंगों की आकृतियां पेंटिंग के रूप में काग़ज़ पर उभर आती है। शिक्षक बच्चों के साथ तैल के रंग और जल रंग के बारे में चर्चा करता है। क्या वजह है कि रंगों की विभिन्न आकृतियां पेंटिंग के रूप में काग़ज़ पर उभर आती हैं, इस प्रश्न को लेकर बातचीत होती है। मूल रंग कौन–कौन से है? उन्हें एक दूसरे में मिलाने से और कौन–कौन से रंग तैयार किए जा सकते हैं। सूर्य के प्रकाश में कितने रंग होते हैं? इंद्रधनुष बारिश के समय क्यों दिखता है? क्या वजह है, हमें क़ुदरत में अलग–अलग रंग दिखते हैं? इन सवालों पर बच्चों के साथ चर्चा की जाती है। इस गतिविधि में बच्चों के द्वारा बनाए गए ग्रीटिंग काड्र्स का बुनियादी शाला और स्थानीय समुदाय में उपयोग किया जाता है।

(5) **सिलाई** : सिलाई की गतिविधि में बुनियादी शाला के बच्चे बटन टांकना, हुक लगाना, अपने फटे हुए कपड़े सिलना सीखते हैं। मोटी और पतली सुई व धागे के मोटे और पतले होने पर सिलाई में क्या फ़र्क़ पड़ता है, मज़बूत सिलाई कैसे हो सकती है पर बच्चे व शिक्षक चर्चा करते हैं। बच्चे सिलाई सीखने के पहले धागा पिरोना, मशीन चलाना, बाद में पुराने अख़बार पर सीधी मशीन चलाते हैं। मशीन के कलपुर्जों के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करते हैं। एक रूमाल बनाना है, तो उसके लिए लबांई–चौड़ाई कितनी होगी। पहले वे उसी लंबाई–चौड़ाई का रद्दी अख़बार का टुकड़ा काटकर देखते हैं, फिर कपड़ा काटकर, रूमाल बनाते हैं रूमाल के किनारों को मोड़कर तुरपाई करना सीखते हैं। वे इसी प्रकार धीरे–धीरे आगे बढ़ते हुए कपड़ों की सिलाई करने के कौशलों को प्राप्त करते हैं।

आवासीय शाला के दैनिक कार्य : इस आवासीय बुनियादी शाला के बच्चे और बच्चियां सुबह पांच बजे उठ जाते हैं। बच्चे अपना नित्य कर्म करने के बाद शिक्षक की देखरेख में शाला कैंपस की साफ़–सफ़ाई और पेड़–पौधों को पानी पिलाने के साथ मेस (रसोई) में अन्य छोटे–मोटे कार्य करते हैं। ये कार्य सुबह और शाम दोनों समय चलते हैं। इन कार्यों के अंतर्गत बच्चे अपने शिक्षकों के साथ मिलकर मेस में अनाज साफ़ करना, सब्ज़ियों को काटना, आटा गुंधना, रोटी बनाना आदि कार्य करते हैं। आवासीय शाला के कामों के लिए बच्चों के चार दल बनाए गए हैं– पानी प्रबंध, साफ–सफ़ाई

प्रबंध, भोजन प्रबंध एवं स्वास्थ्य प्रबंध दल हैं, जो इन कामों को बारी–बारी से ज़िम्मेदारी के साथ करते हैं।

जड़ी–बूटी एकत्रीकरण : आवासीय शाला में बालकों को सुबह उठते ही मंजन की ज़रूरत होती है। बच्चों के लिए बार–बार बाज़ार जाना और मंजन के डिब्बे या पेस्ट लाना महंगा पड़ता है। हमने सोचा, क्यों नहीं यहां ही मंजन बना लिया जाए। मंजन बनाने के लिए गेरू, कपूर, लौंग और फिटकरी को नाप–तौल के आधार पर बारीक़ पीसकर कपड़े में छान लिया जाता है। फिर सभी चीज़ों को एक अनुपात में मिलाकर, उसका मिश्रण तैयार कर लिया जाता है। इस तैयार मंजन को छोटी बोतल व डिब्बों में भर दिया जाता है। बुनियादी शाला के बच्चे अपने दैनिक जीवन में इसका इस्तेमाल करते हैं साथ ही वे इस मंजन को अपने परिवार के इस्तेमाल के लिए घर पर भी ले जाते हैं।

इस आदिवासी क्षेत्र में मलेरिया का प्रकोप सबसे ज़्यादा होता है। हमारे यहां की नदी के किनारे कड़वी नाए (पौधे का स्थानीय नाम) के पौधे ख़ूब उगते हैं। इन पौधों पर सफेद फूल आते हैं और इसकी पंत्तियां नुकिली होती हैं इस पौधे की पत्तियों को बच्चे इकट्ठा करते हैं व उन्हें छाया में सुखाते हैं। इसके साथ ही नीम व तुलसी के पत्ते भी छाया में सुखाए जाते हैं। नाए, तुलसी व नीम के पत्तों के सूखने के बाद अलग–अलग पीसकर व छानकर, बराबर मात्रा में मिलाकर, बोतल में भरकर रखा जाता है। किसी को मलेरिया बुख़ार होने पर इस औषधी का उपयोग किया जाता है। यह एक परंपरागत देशी दवाई है, जिसके परिणाम देखने को मिले हैं। यहां के लोग इसका उपयोग भूलते जा रहे हैं। मलेरिया क्या है? किससे होता है? मच्छरों का नाश करने के लिए क्या करना चाहिए? मलेरिया न होने के लिए क्या सावधानी रखेंगे? मलेरिया हो जाए तो कड़वी नाए के अलावा विशेष परिस्थितियों में डॉक्टर के पास जाना चाहिए न कि झाड़–फूंक करवाने वाले के पास, आदि बातों पर बच्चों के साथ चर्चा होती है। इस प्रवृत्ति के पीछे यही उद्देश्य है कि बच्चों में अभी से यह आदत पड़े कि जो चीज़ घर में बनाई जा सकती हो, उसे बना लिया जाए। इससे हमारे गांवों के पारंपरिक ज्ञान का रक्षण भी होता है।

संपर्क संस्थान, पेटलावद (ज़िला झाबुआ, मध्य प्रदेश) की बुनियादी शाला की संचालिका हैं।

केस स्टडी

विद्या भवन बुनियादी शिक्षा : एक अध्ययन

रजनी द्विवेदी

विद्या भवन में बुनियादी शिक्षा की कहानी बड़ी दिलचस्प रही है। विद्या भवन में किए गए प्रयोगों के किस्से बिखरे–बिखरे सुनने को मिलते थे। हाल ही में रजनी द्विवेदी ने अपनी एम. ए. की पढ़ाई के दौरान केस स्टडी की, जिसके तहत उन्होंने साक्षात्कार किए और दस्तावेजों का अध्ययन किया। लेखिका ने पता लगाने की कोशिश की कि आखिर विद्या भवन बुनियादी मदरसे में कक्षाओं का स्वरूप कैसा होता था। क्या कोई लिखित पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें थीं? स्कूल में भाषा कौनसी थी? स्कूल और समुदाय का जुड़ाव किस प्रकार का था? मदरसे का स्वरूप मौजूदा स्कूलों से किस प्रकार भिन्न था? उस केस स्टडी में उन चुनौतियों की भी झलक मिलती हैं, जिनसे विद्या भवन बुनियादी मदरसा जूझ रहा था।

अध्ययन का स्रोत : (अ) शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के साथ अनौपचारिक साक्षात्कार/बातचीत

1. गणेशलाल जैन (विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम सत्र के विद्यार्थी जो बाद में मदरसे के प्रधान भी रहे)
2. मदरसे के प्रथम प्रधानाचार्य (दयाल चन्द्र सोनी) के प्रकाशित आलेख
3. स्कूल की लेखा पुस्तकें
4. 1948 एवं 1955 में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या पूर्ण करने वाले विद्यार्थियों की अंकतालिकाओं का रिकॉर्ड।

महात्मा गांधी द्वारा बुनियादी शिक्षा का जो विचार उभारा गया, उसमें राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे अनेक साथियों के विचार भी सम्मिलित थे। यह योजना 'बुनियादी शिक्षा', 'नई तालीम' और 'वर्धा स्कीम' के नाम से जानी जाती है। शिक्षा की इस योजना ने पूर्व औपनिवेशिक भारत में आकार लिया और इसका विकास अक्टूबर 1937 में वर्धा में आयोजित गांधी सहित अन्य विचारकों के विचारों पर आधारित सम्मेलन में हुआ। डॉ. जाकिर हुसैन, जो उस समय जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में प्राचार्य थे, के नेतृत्व में एक समूह को यह ज़िम्मेदारी दी गई कि वे इसके लिए एक विस्तृत योजना बनाए तथा इसे सबके साथ साझा करें।

बुनियादी शिक्षा की योजना बनाई गई, उसमें संशोधन भी हुए और बहुत से लोगों ने इसे स्वीकार किया। इस विचार पर आधारित अनेक विद्यालय पूरे भारत में खोले गए। इन विद्यालयों का फ़ोकस बुनियादी शिक्षा पर था। इसके आधारभूत सिद्धांत इस प्रकार थे–

1. 7 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा।

2. बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाए।

3. बौद्धिक एवं शारीरिक कार्य एक दूसरे के पूरक हैं और अगर हमारा उद्देश्य, बच्चे का सर्वांगीण विकास है, तो विभिन्न विषयों (गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा) को उद्योग के माध्यम से या उनसे जोड़कर पढ़ाना चाहिए। इससे बच्चों को अकदामिक अवधारणाएं ज़्यादा अच्छे तरीक़े से समझने में मदद मिलती है।

4. स्कूल में इस सिद्धांत का ज़ोर समुदाय के साथ संबंधों पर भी था। पूर्व औपनिवेशिक भारत में ग्राम पंचायतें थीं, जिनके पास प्रशासकीय शक्ति के साथ–साथ ग्राम के विकास की ज़िम्मेदारी भी थी। विकास और शासन के ब्रिटिश नज़रिए ने जहां इस व्यवस्था को ख़त्म करने की कोशिश की, वहीं महात्मा गांधी का विचार था कि कोई देश तभी तरक़्क़ी कर सकता है, जब इसकी सबसे छोटी इकाई (गांव) तरक़्क़ी करे। शिक्षा और विद्यालय गांव के नेतृत्व और नियंत्रण में होने चाहिए। यह भी महसूस किया गया कि अगर बच्चों को समुदाय के साथ काम करने के अवसर मिले, तो वह उन्हें समुदाय और उनकी समस्याओं को समझने में मदद करेगा।

पूर्व औपनिवेशिक काल में बुनियादी शिक्षा के शुरुआती समय में स्थापित विद्यालयों में से विद्या भवन बुनियादी विद्यालय भी एक था। ये स्थापित विद्यालय बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों पर केंद्रित थे। हालांकि हर एक विद्यालय के संसाधन, स्थितियां और प्रकृति अलग–अलग थी पर इन सबमें नज़रिए की एकरूपता थी।

बुनियादी मदरसे का संक्षिप्त इतिहास

वर्तमान में इस मदरसे का नाम विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय है। विद्या भवन के संस्थापक डॉ. मोहनसिंह मेहता के प्रयासों से 23 अप्रैल 1941 में विद्या भवन बुनियादी मदरसे (विद्यालय) की स्थापना हुई। विद्यालय की नींव श्री टी.वी. राघवाचार्य (तत्कालीन अध्यक्ष, मेवाड़ राजघराना) द्वारा रखी गई और इसका उद्घाटन डॉ. जाकिर हुसैन द्वारा किया गया। यह विद्यालय 11 बच्चों व एक शिक्षक के साथ, एक प्रयोग की तरह शुरू हुआ। जैसा कि दयालचंद्र सोनी (विद्यालय के पहले प्रधानाचार्य) ने अपने आलेख में भी ज़िक्र किया है कि हम ''बुनियादी शिक्षा पर श्रद्धापूर्वक प्रयोग करके देखेंगे।''[1]

यह विद्यालय एक पहाड़ी (रायमगरी) की तलहटी में उदयपुर शहर से लगभग 7 से 8 किमी की दूरी पर रामगिरि गांव के पास स्थित है। उस समय (1943 में) विद्यालय भवन बहुत बड़ा तो नहीं था पर वहां शिल्प और हाथ के काम के लिए काफ़ी जगह थी। न केवल उदयपुर के आसपास के गांवों जैसे रामगिरि, बेदला, चिकलवास लोयरा, पालड़ी आदि से बच्चे विद्यालय में आते थे, बल्कि डूंगरपुर, आसपुर, खेरवाड़ा आदि स्थान जो 70–80 किमी दूरी पर थे, वहां के बच्चे भी विद्यालय में भर्ती होते थे। शुरुआती सालों में बच्चों की संख्या बहुत कम थी जैसे लगभग 10 बच्चे प्रत्येक कक्षा

में थे। जैसाकि नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका
विद्यालय में बच्चों की संख्या

वर्ष	प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या	उपस्थिति प्रतिशत में
1944–45	60	78
1945–46	68	75
1946–47	72	70
1947–48	69	75
1948–49	73	79
1949–50	65	77
1950–51	65	84
1951–52	82	80
1952–53	90	80

1951–52 में रामगोपाल पांडे की रिपोर्ट पर आधारित

बच्चों की कम संख्या की समस्या को दयालचंद्र सोनी ने अपने कार्यकाल के दौरान हर आलेख में इंगित किया है। ''चाहते हुए या न चाहते हुए भी, किसानों को अपने बच्चों की मदद लेनी ही पड़ती है। तब, जो किसान ग़रीब होने के साथ क़र्ज़दार भी थे, बच्चों को मदरसे भेजने में उनकी मजबूरी का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।''[2]

''नया बुनियादी मदरसा किसी अकेले बड़े गांव के लिए खोला जाना चाहिए, जहां काफ़ी बच्चे मिल सकें।''[3] रामगोपाल पांडे (1951–52) के अनुसार ''कुछ सालों तक विद्यालय उच्च जाति हिन्दुओं में ज़्यादा प्रचलित नहीं था क्योंकि यहां भील बच्चों को भी भर्ती किया जाता था।''[3]

हालांकि विद्यालय में नामांकन के लिए 7 से 14 वर्ष तक की उम्र निर्धारित की गई थी, पर पहले सत्र में और बाद के कई सत्रों में, कई बच्चे ऐसे थे जिनकी उम्र कक्षा के हिसाब से ज़्यादा होती थी। ''आज की परिस्थिति में ख़ानगी मदरसों के लिए ठीक सात से चौदह वर्ष के छात्र पाना अत्यन्त कठिन है। अस्तु बड़ी उम्र के विद्यार्थियों को भी भर्ती करना पड़ता है।''[4]

विद्यालय की पाठ्यचर्या

समय के साथ–साथ विद्यालय की पाठ्यचर्या में बदलाव करना ज़रूरी होता है। कभी बदलाव स्कूल के कुछ जागरूक प्रयासों के चलते और कभी सामुदायिक अपेक्षा आदि अन्य कारकों के कारण हुए। इस कारण विद्या भवन बुनियादी मदरसे की पाठ्यचर्या भी समय के साथ बदलती रही।

उपलब्ध स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर मैंने निम्न समयावधियों में विद्यालय की पाठ्यचर्या को समझने का प्रयास किया–

1941 से 1955

गणेशलाल जैन, जो कि विद्यालय के पहले छात्र थे, ने भी साक्षात्कार में उल्लेख किया कि 1947 तक विद्यालय में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या लागू थी। विद्यालय के पहले और दूसरे सत्र के बच्चों को अगस्त 1955 में पहली बार अंकतालिकाएं दी गईं और सभी अंकतालिकाओं में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या का उल्लेख है। विद्यालय समय के दौरान, विद्यार्थी विद्यालय में चलने वाली कृषि, कताई–बुनाई और सुथारी उद्योग की आर्थिक गतिविधियों में कार्य करते थे। विद्यार्थियों को उनके काम की मात्रा और योगदान के फलस्वरूप प्राप्त आय के अनुपात में भुगतान किया जाता था। प्रत्येक कक्षा द्वारा कमाई गई (शुद्ध आय) राशि को उस कक्षा के खाते में जमा करवाया जाता था। 1950 से 54 की विद्यालय की लेखा पुस्तकों में भी कक्षा 7 तक की कक्षाओं का उल्लेख मिलता है।

हालांकि रामगोपाल पांडे की एक रिपोर्ट (1952–53) कक्षा 8 का भी हवाला देती है। 'विद्यालय के द्वारा

पाठ्यचर्या के विस्तार की ज़रूरत महसूस की गई।' यह बात दयालचंद्र सोनी के द्वारा आर्यनायकम् से लिए गए साक्षात्कार में भी सामने आई, जिसमें उन्होंने पूछा कि ''क्या आप चाहेंगे कि बुनियादी तालीम का अभ्यास 7 वर्षों की बजाय 8 वर्षों का कर दिया जाए। क्योंकि ये आम अनुभव है कि 7 वर्ष का अर्सा बच्चों की उच्च कोटि की शिक्षा के लिए कम पड़ता है।'' (आर्यनायकम् के साथ दयालचंद्र सोनी की बातचीत) विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में संग्रहित लेखा पुस्तकों, अंक तालिकाओं और प्रधानाचार्य के आलेखों का अवलोकन करके और गणेशलाल जैन के साक्षात्कार से यह तथ्य ज्ञात हुआ।

दैनिक गतिविधियां

विद्यालय के दिन की शुरुआत विद्यालय परिसर, कक्षाओं और शौचालयों आदि को साफ़ करने, पीने के पानी के मटके भरने, छोटे बच्चे जो खुद नहीं नहा सकते, उन्हें नहलाने और पौधों को पानी देने जैसी गतिविधियों के साथ होती थी। बच्चों के अलग–अलग समूह, अलग–अलग कामों के लिए ज़िम्मेदार होते थे। हर समूह का नेतृत्व एक विद्यार्थी करता था जिसे मुखी कहा जाता था। हर समूह में कक्षा 1 से 7 तक के बच्चे व दो शिक्षक होते थे। हर समूह को बारी–बारी से प्रत्येक काम करना होता था। प्रत्येक शनिवार को समूह के मुखी या नेता को गत सप्ताह की गतिविधियों की रिपोर्ट देनी होती थी और अगले सप्ताह के लिए अपने समूह के नए काम की ज़िम्मेदारी लेनी होती थी। इन सारे कार्यों के बाद विद्यालय में विद्याथियों के द्वारा (कक्षावार) नियमित रूप से अवधि तक प्राथमिक चिकित्सा सहकारी दूकान, कताई–कोठार औज़ार घर एवं बाल पुस्तकालय का संचालन किया जाता था, जिन्हें 'नियोजिता सेवा' कहा जाता था। यह सेवा 20 मिनिट की अवधि की होती थी। और ये सभी काम प्रार्थना सभा के पहले होते थे। प्रार्थना सभा में सप्ताह के दिन (वार) के आधार पर अलग–अलग प्रार्थनाएं, रामायण पाठ, अनमोल वचन (महान् लोगों के विचार) कहानी कथन (शिक्षक व विद्यार्थी द्वारा) के कार्यक्रम होते थे। प्रार्थना सभा में ही विद्यार्थियों की उपस्थिति ली जाती थी। सभी कक्षाओं के लिए एक ही उपस्थिति रजिस्टर था।

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में उपलब्ध रिपोर्टों और लेखापुस्तकों के अध्ययन से विद्यालय के समूहों, छात्र पंचायत, गांव दलों, पंचायत डे आदि के बारे में जानकारी मिलती है। छात्र पंचायत में– सभापति, उपसभापति, न्यायमंत्री, श्रम मंत्री, उद्योग मंत्री आदि पदाधिकारी होते थे। छात्र पंचायत के ये पदाधिकारी छात्रों द्वारा चुने जाते थे।

उद्योग का काम

विद्या भवन बुनियादी मदरसे में प्रमुख रूप से कृषि, कताई–बुनाई व सुथारी (बढ़ईगीरी) के उद्योग चलते थे। इन उद्योगों को तत्कालीन समय की सामाजिक ज़रूरतों, प्राकृतिक वातावरण एवं विद्यालय में उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए चुना गया था। विद्यालय में प्रार्थना सभा कार्यक्रम के तुरंत बाद उद्योग कार्य की कक्षाएं होती थीं। इन उद्योग के कालांशों के बाद विषयों की कक्षाएं होती थीं। जैसाकि गणेशलालजी ने साक्षात्कार में कहा, ''छोटे बच्चों से कृषि संबंधी काम नहीं करवाया जाता था।'' कृषि कार्य कक्षा 4 से शुरू होता था। सबसे छोटी कक्षाएं (कक्षा 1 से 3 तक) विषयगत कालांशों के बाद तकली पर सूत कातने का कार्य करती थीं। अकादमिक विषय उद्योग के माध्यम से पढ़ाए जाते थे। इसीलिए कई बार विषयाध्यापन उद्योग कार्य के दौरान फ़ील्ड में

होता था। जैसे मिट्टी के प्रकार, ज़मीन या क्षेत्र मापना, क्षेत्रफल निकालना, फ़सल को तौलना, उर्वरकों और कीटनाशकों के बारे में जानना आदि।

साल के आख़िर में प्रत्येक कक्षा और बच्चे की कमाई (लेखापुस्तकें 1948, 50, 54, 65) भी इस तथ्य को और पुख़्ता करती है कि हर कक्षा का हर बच्चा किसी एक उद्योग से जुड़ा था। हालांकि प्रत्येक कक्षा की वास्तविक समय सारिणी क्या थी और कितना समय उद्योग की कक्षा और अकादमिक विषयों के अध्ययन पर दिया जाता था, स्पष्ट नहीं था।

इस बुनियादी विद्यालय में खेती (कृषि) के लिए ज़मीन उपलब्ध थी और छात्र इसमें मौसमी सब्ज़ियां, और विभिन्न फसलें उगाते थे जैसे– गन्ना, मक्का, कपास, गेहूं, जौ, ज्वार, धनिया, लहसुन आदि। छात्र कृषि कार्य के अंतर्गत निराई–गुड़ाई, सिंचाई, खेत की जुताई और ऐसे ही कामों में अपनी सेवाएं प्रदान करते थे। उद्योगों के कामों के लिए प्रत्येक कक्षा का खाता था। इस खाते में उद्योगों में बच्चों द्वारा किए गए कार्य के शुद्ध लाभ (कमाई) को जमा किया जाता था। शिक्षक के निर्देशन में बच्चों का एक समूह इन खातों को संचालित करता था। इस काम में बच्चों की कक्षा को कृषि के लिए दिए गए बीज, उपकरण आदि का ब्यौरा होता था। इसी तरह अन्य उद्योगों में भी इसी तरह के विवरण का उल्लेख होता था।

इन उद्योगों में हुई बच्चों की कमाई को उनके निजी खातों में, जमा करवा दिया जाता था। विद्यार्थियों के ये निजी खाते विद्यालय में ही होते थे और ख़ुद विद्यार्थियों द्वारा संचालित किए जाते थे। इन निजी खातों की राशि का उपयोग विद्यार्थी कॉपी–किताब ख़रीदने के लिए या नाश्ते के लिए करते थे। इस संदर्भ में यदि कोई विद्यार्थी अध्ययनरत कक्षा को बीच में ही छोड़ता था, तो उसके द्वारा कमाई हुई राशि को छात्र पंचायत में जमा कर दिया जाता था, जिसका बाद में ग़रीब छात्रों के भोजन, कॉपी–किताबें या कपड़े आदि को उपलब्ध करवाने में इस्तेमाल किया जाता था।

दयालचंद्र सोनी ने अपनी बुनियादी शिक्षा की तालीम जामिया मिलिया इस्लामिया से प्राप्त की थी। उस समय के उनके द्वारा लिखे, अनेक आलेख विद्या भवन बुनियादी मदरसे की कहानी को बयां करते हैं।

अनेक शिक्षाविदों और राजनीतिज्ञों ने बुनियादी शिक्षा के इस विचार की खुलकर सराहना की। यद्यपि इन लोगों को भी यह स्पष्ट नहीं था कि बुनियादी शिक्षा का क्या स्वरूप हो सकता है और इसके लिए विद्यालयों में इसकी क्या जगह होगी। जैसा कि दयालचंद्र सोनी ने एक मुहावरे या लोकोक्ति के रूप में कहा है कि :

''अभी हम तीतर के नाम पर उस झाड़ी को पीट रहे हैं, जिसके विषय में हमें यक़ीन है कि तीतर उसी में है... उस तालिमी तीतर की शक्लो–सूरत कैसी होगी, इस बारे में हमारी क्या कल्पनाएं हैं, अभी से निश्चयपूर्वक कुछ कह देना बुद्धिमानी नहीं होगी। बहुत संभव है कि उसका स्वरूप मौजूदा स्कूलों से जुदा हो।''[5]

अकादमिक विषय अध्ययन

बुनियादी मदरसे के इस विद्यालय में हिन्दी, गणित, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान और चित्रकला विषय पढ़ाए जाते थे। इसमें उद्योग पर फ़ोकस रहता था और शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे विषय शिक्षण को उद्योग के इर्द–गिर्द ही बुनें। इस संदर्भ में विद्यालय में एक कक्षा एक शिक्षक की परंपरा चलती थी ताकि शिक्षक विभिन्न विषयों

तथा उद्योग में क्या पढ़ाया और क्या करवाया जाए, दोनों को जोड़ सकें। इस बुनियादी विद्यालय में अक्सर बच्चे कताई करते समय, अपने संख्या ज्ञान को विकसित करते थे, जैसे तकली के पहिए के घूमने की गिनती करना, अपने द्वारा बनाई गई पूनियों को गिनना, अनुमान लगाना कि इतनी पूनियां बनाने के लिए कितनी डूंडियों (कपास को साफ़ कर बनाया गया गोला) की ज़रूरत होगी आदि। इसी तरह विज्ञान भी पढ़ाया जाता था। शिक्षक मिट्टी, जल, उर्वरकों, उनके गठन और कीटनाशकों आदि के बारे में विद्यार्थियों के साथ चर्चा करते थे और विद्यार्थियों से अपेक्षा रहती थी कि जो चर्चा हुई है, उसे वे लिख लें। गणेशलाल जैन से हुए साक्षात्कार के अनुसार यहां विद्यालय को समुदाय के जीवन से जोड़ने का भी प्रयास होता था। विद्यार्थियों के समूह अक्सर गांव के भ्रमण को जाते थे, जहां वे लोगों से स्वास्थ्य और स्वच्छता के साथ–साथ समाज में फैली कुरीतियों पर भी बात करते थे। गांधी जयंती, तुलसीदास जयंती, सूरदास जयंती, बसंत पंचमी आदि कार्यक्रम विद्यालय के बजाए गांव में मनाए जाते थे।

इन कार्यक्रमों में विद्यार्थियों से यह अपेक्षा रहती थी कि वे तुलसीदासजी और सूरदासजी की रचनाएं एकत्रित करें, उनके अर्थ को समझें, उन पर बात कर सकें और उनके बारे में समुदाय के समक्ष सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रस्तुत कर सकें। विद्यालय में हर वर्ष 2 अक्टूबर को गांधी मेला आयोजित किया जाता था जिसमें बच्चे गांधी के जीवन से संबंधित कार्यक्रमों को प्रस्तुत करते थे। इस दौरान प्रदर्शनी भी लगाई जाती थी।

विद्यालय में भाषा और गणित सिखाने के बारे में गणेशलाल जैन से यह पूछा गया कि शुरुआती कक्षा में भाषा और गणित शिक्षण की शुरुआत कैसे की जाती थी और क्या बच्चे उस स्तर पर संख्याओं को लिख, पढ़ और समझ पाते थे। इस पर उनका कहना था कि सब कुछ परंपरागत तरीके से होता था। शुरुआत में इस तरीक़े में वर्णों और अंकों का उच्चारण करने, याद करने तथा बाद में याद करने और उसे बार–बार लिखने के अभ्यास शामिल थे।

पाठ्यपुस्तकों का उपयोग

यद्यपि विद्यालय में शिक्षकों के लिए किताबें थीं परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि वहां बच्चों के लिए भी किताबें थीं या नहीं। ऐसा लगता है कि उस समय विद्यालय इस मुद्दे से जूझ रहा था कि बुनियादी तालीम प्रदान करने के लिए हमारे पास किस तरह की पाठ्यपुस्तकें होनी चाहिए। उपलब्ध पाठ्यपुस्तकें तो नई तालीम के लिए उपयुक्त नहीं थीं। क्योंकि उनमें उद्योग के लिए जगह नहीं थी, तो ऐसी स्थिति में विषयों का उद्योग कार्य के साथ जुड़ाव कैसे किया जाए, यह प्रमुख समस्या हमारे सामने थी। दूसरी समस्या, भाषा की थी। बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत के अनुसार, बच्चे की शिक्षा का माध्यम उसकी अपनी मातृभाषा होनी चाहिए। इस विद्यालय में भी मातृभाषा का विकल्प रखा गया था। किन्तु विद्यालय में पढ़ाने की भाषा बच्चों की अपनी भाषा नहीं होती थी और बच्चों के लिए हिंदी भी यह अन्य भाषाओं की तरह दूसरी भाषा ही होती है। इस तरह विद्यालय में पढ़ने में जो भाषा प्रयोग में लायी जाती है वह न तो सामान्य भाषा होती है और न ही क्षेत्रीय भाषा होती है। इस मुद्दे पर राष्ट्रवादी उत्साह देखते हुए हिंदी को मातृभाषा माना गया और अंग्रेज़ी को छोड़ दिया गया था।

बुनियादी शिक्षा पाठ्यचर्या के लिए पाठ्यपुस्तक होनी चाहिए, पर एक शंका यह है कि अगर पाठ्यपुस्तक होती है, तो क्या वह बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करेगी, जैसे कि उसमें विद्यालय के अनुभवों को जोड़ना और शिक्षा के मुख्य

अवधारणात्मक सरोकारों को सम्मिलित करना। ''शिक्षकों से पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों के संदर्भ में विषयों और उद्योगों को जोड़ते हुए पाठ्यचर्या तैयार करने की अपेक्षा थी।''[6]

चुनौतियां

बुनियादी शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती यह समझना है कि इसका अर्थ क्या है और इसे स्कूलों में कैसे लागू किया जाए। यह मदरसा एक प्रयोग के आधार पर शुरू किया गया था और इसने बुनियादी शिक्षा के अपने संदर्भ निकालने का प्रयास किया। कई ऐसे तरीक़े इस विद्यालय ने अपनाए जैसे– विद्यार्थियों का विद्यालय के बाहर जाकर काम करना, समुदाय की मदद करना, कमाई करना आदि जो बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धांतों में मौजूद नहीं थे। लेकिन यह प्रयोग अभिभावकों में यह विश्वास पैदा कर सका कि बच्चे पढ़ते हुए भी उनकी मदद कर सकते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो इसका सीधा असर बच्चों की उपस्थिति पर होता। विद्यालय में पाठ्य विषय और उद्योगों के बीच जुड़ाव या समवाय स्थापित करना, हमारा दूसरा, मुख्य सरोकार था। इससे जुड़ा अन्य मुद्दा विद्यालय में ऐसे सक्षम शिक्षकों की उपलब्धि थी, जिन्हें विषय और उद्योग दोनों की समझ हो, ताकि वे इन दोनों को आपस में गूंथ सकें। ''दस्तकारी या उद्योग के ज़रिए तालीम देने वाले शिक्षक को स्वयं शिक्षित होने के साथ ही उसे चुनी हुई दस्तकारी में भी दक्ष होना चाहिए। इसके बिना वह न तो दस्तकारी सिखा सकता है और न ही पढ़ा सकता है। और इसके बिना वह दोनों में समन्वय तो हर्गिज़ नहीं कर सकता... बुनियादी तालीम का पथ अभी प्रशस्त नहीं हो पाया है। इस दिशा में योग्य शिक्षकों की अनिवार्य आवश्यकता है।''[7]

''इस विद्यालय ने आर्थिक मुश्किलों का भी सामना किया। विद्यालय में विभिन्न उद्योगों को चलाने के लिए संसाधन जुटाने, पाठ्यपुस्तकों की ज़रूरत को पूरा करने के लिए उनके बजाए संदर्भ पुस्तकों को जुटाने तथा पुस्तकालय को व्यवस्थित करने के लिए काफ़ी सारे निवेश की ज़रूरत थी। एक सामान्य विद्यालय को स्थापित करने की तुलना में बुनियादी तालीम के विद्यालय को स्थापित करने में कई गुणा अधिक खर्चा आता है।''[8]

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।
अंग्रेज़ी से अनुदित– कामिनी उपाध्याय,विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।

संदर्भ

1,2,5, सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1943, विद्या भवन प्रकाशन

3,4,7 सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1944, विद्या भवन प्रकाशन

6,8 सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1945, विद्या भवन प्रकाशन

बीजारोपण

मार्जोरी साइक्स

गतांक से आगे...

अब तक हमने पढ़ा कि किस तरह मार्जोरी साइक्स ने अपने स्कूल के अनुभव से नई तालीम की कहानी की शुरूआत की थी। वह गांधी के विचारों से प्रभावित हुईं और उन्होंने यह भी महसूस किया था कि गांधी के विचारों का संबंध उनके बचपन के अनुभवों से जुड़ा था। वह अपने पिताजी के साथ, बच्चों के कुछ करने एवं बनाने के लिए चीज़ें जुटाने और तैयार करने में, घंटों समय व्यतीत करती थी। उन्होंने बताया कि किस तरह उनके पिताजी भूगोल, इतिहास, काव्य, संगीत को बच्चों के अनुभवों के साथ जोड़कर सिखाते थे। औपनिवेशिक जनता द्वारा अपनी पहचान के लिए चलाए जा रहे संघर्षों की रुचि उनकी केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गहरी हुई, जहां उन्हें भारतीय मित्रों से यहां के राष्ट्रीय आंदोलन और उनके नेताओं के बारे में पता चला। वह आयरलैंड के नौजवान नेताओं के प्रस्तावों से काफ़ी आकर्षित थीं कि वे ऐसे स्कूल खोलना चाहते थे, जो उनकी संस्कृति के मूल्यों की रक्षा कर सके और पश्चिम के बढ़ते दबाव का मुकाबला करने में, उनको मदद दें। वे चाहते थे कि ब्रिटिश अध्यापक समानता की दृष्टि से उनकी सहायता करें। टैगोर के कथन ने उनके विश्वास को और मजबूती दी थी कि बच्चों की शिक्षा में उनकी मातृभाषा का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए। उनका स्कूल द्विभाषी था और वे इस बात का खयाल रखते थे कि वहां बोली जाने वाली भाषाओं को उचित सम्मान मिले। इस बात का उन्हें बाद में पता चला कि गांधीजी भी मातृभाषा के इस्तेमाल पर ज़ोर दे रहे हैं। अब आगे...

1937 में जब गांधीजी ने हरिजन में शिक्षा संबंधी लेख लिखे तब तक वह कम से कम 40 वर्ष तक शिक्षा के प्रश्न पर चिंतन–मनन कर चुके थे। 1896 से पहले वह दक्षिण अफ़्रीका में 3 साल बिता चुके थे। उस दौरान उनकी पत्नी और दो छोटे बच्चे भारत में ही थे। जब ये साफ़ हो गया कि उनके काम में अभी कई और साल लग सकते हैं, तो वह अपना परिवार लाने के उद्देश्य से भारत आए। 1897 की शुरुआत में वह तीन बच्चों के साथ वह डरबन लौटे। उनमें से दो उनके अपने बेटे थे और एक उनका भांजा था। उनके बेटों की उम्र 9 और 5 वर्ष थी जबकि उनकी बहन का बेटा 10 वर्ष का था। डरबन आते ही पहला सवाल उन बच्चों की शिक्षा का उठा। तीन चीज़ों के बारे में गांधीजी की राय शुरू से ही एकदम साफ़ थी : एक, बच्चों को घर पर रहना चाहिए, उनको मां–बाप से अलग करके आवासीय विद्यालय में नहीं भेजा जाना चाहिए; दूसरा, उनको अपनी मातृभाषा में शिक्षा मिलनी चाहिए और तीन, उनको ऐसी कोई विशेष सुविधाएं नहीं मिलनी चाहिए, जो

भारत के अन्य बच्चों को नहीं मिलती हों।

उनको घर में रहना चाहिए क्योंकि जो शिक्षा एक सुव्यवस्थित घर में सहज ही बच्चों को मिल सकती है, वह हॉस्टल में बहुत मुश्किल है। गांधीजी मानते थे कि घर के अंतरंग संबंध ही सारी नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा की नींव हैं। इसे वह केन्द्रीय महत्त्व देते थे। उन्होंने लिखा, मैंने हमेशा ही हृदय की संस्कृति और चरित्र निर्माण को पहले स्थान पर रखा है। बाद में जब उन्होंने उन दिनों का पुनरवलोकन किया, तो उन्हें लगा कि उनके बच्चे घर में पढ़ते हुए सादगी और सेवा का अर्थ सीख चुके थे क्योंकि यह घर ऐसा था, जहां इन बातों की खोज हो रही थी और उनको अमल में लाया जा रहा था। गांधीजी मातृभाषा के इस्तेमाल पर भी बहुत ज़ोर देते थे। उन्होंने कहा था, मेरी दृढ़ मान्यता रही है कि जो भारतीय मां–बाप अपने बच्चों को उनकी शैशवावस्था से ही अंग्रेज़ी में सोचना और बातचीत करना सिखाने लगते हैं, वे अपने बच्चों और अपने देश के साथ धोखा करते हैं। वे उन्हें राष्ट्र की आध्यात्मिक एवं सामाजिक विरासत से वंचित करते हैं और उन्हें देश की सेवा के लिए अयोग्य बना डालते हैं। दक्षिण अफ़्रीका में संचार माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी को मान्यता मिली हुई थी। वहां के स्कूलों में भारतीय भाषाएं पढ़ायी भी जाती थीं, तो उनकी दशा बहुत ख़राब थी। इसीलिए गांधीजी अपने बच्चों से बात करते हुए हमेशा गुजराती के इस्तेमाल पर ज़ोर देते थे और इस माध्यम में बच्चों को सामान्य शिक्षा देने के लिए समय निकालने की भरसक कोशिश करते थे। जब भी संभव होता बच्चे घर से ऑफ़िस तक उनके साथ जाते और पूरे रास्ते वह तरह–तरह के विषयों पर चर्चा करते। वकालत और सार्वजनिक कार्यों के कारण उन्हें बहुत कम समय मिल पाता था। लिहाज़ा, बच्चे एवं गांधीजी, दोनों ही अपनी शिक्षा में साहित्यिक तत्त्वों का अभाव महसूस करते। घर पर रहकर संपूर्ण शिक्षा के मार्ग में आनेवाली इन्हीं व्यावहारिक दिक़्क़तों ने संभवतः गांधीजी को व्यवस्थित स्कूलों के लिए ज़ोर देने पर बाध्य किया था।

इसका मतलब यह भी नहीं था कि कोई भी स्कूल चल जाएगा। डरबन के श्वेत समुदाय में गांधीजी का जो सम्मान था, उसके आधार पर वह अपने बच्चों को कुलीन वर्ग के किसी भी स्कूल में भेज सकते थे, जहां आम तौर पर भारतीय बच्चों को दाख़िला नहीं मिलता था। परंतु इसे आत्म–सम्मान का प्रश्न बनाते हुए, उन्होंने अपने बच्चों को ऐसे किसी स्कूल में भेजने से इनकार कर दिया। निस्संदेह, बच्चों को अच्छी साहित्यिक शिक्षा अंग्रेज़ी में ही मिल सकती थी लेकिन तब यह शिक्षा अपने ही लोगों के साथ अनुचित भेदभाव की क़ीमत पर हासिल होती। गांधीजी ने लिखा, मैंने उनको साहित्यिक शिक्षा की क़ीमत पर आज़ादी एवं आत्मसम्मान का ज़रूरी पाठ पढ़ाया। यदि आज़ादी और सीखने में से किसी एक को चुनना हो... तो आज़ादी को ही वरीयता देना उचित होगा। 1904 तक हालात ऐसे ही चलते रहे। तब तक गांधीजी का मुख्य कार्य जोहानसबर्ग में केंद्रित हो चुका था, हालांकि डरबन से भी उनका जीवंत संपर्क बना रहा। उन्होंने वहां के मित्रों को इंडियन ओपीनियन पत्र शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया, जो जल्द ही

जो भारतीय मां–बाप अपने बच्चों को उनकी शैशवावस्था से ही अंग्रेज़ी में सोचना और बातचीत करना सिखाने लगते हैं, वे अपने बच्चों और अपने देश के साथ धोखा करते हैं। वे उन्हें राष्ट्र की आध्यात्मिक एवं सामाजिक विरासत से वंचित करते हैं और उन्हें देश की सेवा के लिए अयोग्य बना डालते हैं।

उनका मुखपत्र बन गया। अख़बार जल्दी ही कठिन वित्तीय संकटों में फंस गया और गांधीजी से आह्वान किया गया कि वे ख़ुद डरबन जाकर हालात का जायजा लें। उनके घनिष्ठ मित्र हेनरी पोलाक उन्हें जोहानसबर्ग स्टेशन तक विदा करने आए और 24 घंटे की यात्रा के दौरान पढ़ने के लिए उन्हें एक किताब दी। वह किताब रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' थी। इस किताब का गांधीजी पर गहरा असर पड़ा और फलस्वरूप, उन्होंने डरबन से 14 किलोमीटर दूर लगभग 100 एकड़ ज़मीन लेकर फ़ीनिक्स आश्रम की स्थापना की और इंडियन ओपिनियन प्रेस को यहां ले आए। यहां गांधीजी उस क्रांतिकारी विचार को व्यवहार में लाना चाहते थे, जो उन्होंने 'अनटू दिस लास्ट' से सीखा था। इस किताब में बताया गया था कि केवल शारीरिक श्रमिक, कारीगर और किसान का जीवन ही, सही अर्थों में जीने योग्य है।

उन्होंने प्रेस से जुड़े सारे लोगों और डरबन में रहने वाले दोस्तों को इस साहसिक कार्य से जुड़ने और वहां आकर प्रति परिवार तीन एकड़ ज़मीन लेकर खेतीबाड़ी शुरू करने का प्रस्ताव दे दिया। इस प्रस्ताव पर बहुत ज़्यादा लोगों ने अपनी सहमति नहीं दी परंतु प्रेस के मज़दूर ज़रूर फ़ीनिक्स आश्रम में ही रहने और वहीं से काम करने के लिए तैयार हो गए। परंतु छगनलाल और मगनलाल जैसे कुछ लोगों ने इस प्रस्ताव का पूरा समर्थन किया। मगनलाल ने डरबन का अपना व्यवसाय छोड़कर प्रेस के काम को सीखा और कुछ ही दिनों में उन्होंने इस काम में अपनी महारत साबित कर दी। इस घटनाक्रम के बारे में जानकर हेनरी पोलाक को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भी जोहानसबर्ग के अख़बार की नौकरी छोड़कर फ़ीनिक्स आश्रम में आ गए। हालांकि वह अधिक समय तक नहीं रह सके लेकिन उन्होंने बहुत अच्छा योगदान दिया। छह या सात परिवारों और कुछ छोटे बच्चों के साथ फ़ीनिक्स आश्रम एक गांव–सा बन गया था। आज या कल, अब गांव में स्कूल की भी ज़रूरत होनी ही थी। गांधीजी ने भी अपनी प्रैक्टिस छोड़ दी और तीन एकड़ के अपने हिस्से पर खेती करने लगे।

बाहरी दबाव बहुत ज़्यादा थे। लिहाजा, आने वाले वर्षों के दौरान उन्हें अगले महान सत्य के प्रयोग यानी ट्रांसवाल सत्याग्रह का नेतृत्व करना पड़ा। 1909 में गांधीजी इंग्लैंड गए और वापसी की यात्रा में जहाज पर ही उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' के रूप में अपनी समझ को कलमबंद करना शुरू कर दिया। इसमें हक्सले की एक उक्ति के माध्यम से एक आदर्श शिक्षित मनुष्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है : उसकी देह उसकी इच्छाशक्ति की दास हो और अपना काम सहजता व आनंद से करती हो... उसका मस्तिष्क प्रकृति की मूलभूत सच्चाइयों के ज्ञान से भरा हुआ हो, उसकी उत्तेजनाएं दृढ़ इच्छाशक्ति एवं कोमल चेतना से नियंत्रित हों, वह हर क़िस्म की बुराइयों से घृणा करना सीख चुका हो और दूसरों को वैसा ही सम्मान देता हो, जैसा अपने प्रति रखता है। केवल ऐसा मनुष्य ही उदार शिक्षा से लैस हो सकता है।

जोहानसबर्ग लौटने पर गांधीजी को बड़ी शिद्दत से एक ऐसी जगह की ज़रूरत महसूस होने लगी जहां सत्याग्रहियों के जेल जाने के बाद, उनके आश्रित रह सकें और जेल से छूटकर लौटने पर जहां सत्याग्रहियों का स्वागत किया जा सके। शुरू–शुरू में सत्याग्रहियों के आश्रितों को ज़रूरत के मुताबिक़ मासिक भत्ता दिया जाता था। लेकिन गांधीजी ने महसूस किया कि यह तरीक़ा लोगों को धोखेबाजी के लिए उकसा सकता है और

इसमें असली ज़रूरतमंदों के साथ अन्याय हो सकता है। अब ज़रूरत एक ऐसे सहकारिता आधारित कॉमनवेल्थ की थी, जो जोहानसबर्ग से बहुत दूर न हो। फ़ीनिक्स काफ़ी दूर पड़ता था। यह परेशानी भी गांधीजी के एक अन्य मित्र हरमान कालेनबाख ने दूर कर दी। वह एक धनी एवं सफल वास्तुकार थे। 30 मई 1910 को उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखा और उन्हें शहर से 20 मील दूर फलदार पेड़ों से भरे एक फार्म का प्रस्ताव दिया। उनके इस प्रस्ताव को फ़ौरन मंज़ूर कर लिया गया। कालेनबाख ने इस नए उपक्रम का नाम दिया – टॉल्सटॉय फ़ार्म। पांच दिन बाद कालेनबाख स्वयं गांधीजी और उनके दो बेटों के साथ फ़ार्म पहुंच गए और रहवासियों के लिए व्यवस्था करने में जुट गए। जल्द ही वहां साठ या सत्तर लोग, हर उम्र की औरत, मर्द और बीस या तीस बच्चे आ गए। इस समुदाय में तरह–तरह के लोग थे। उनमें चार भारतीय भाषाएं गुजराती, तमिल, तेलुगू, हिंदी बोलने वाले और चार धर्मों –हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई के लोग शामिल थे। वे लोग अलग–अलग सामाजिक परिवेश से आए थे। और ज़ाहिर है उन्हें एक स्कूल की ज़रूरत थी।

गांधीजी अनुभवों और प्रयोगों के सहारे शिक्षा की एक सच्ची व्यवस्था विकसित करना चाहते थे। वह ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे, जिसका सपना उन्होंने हिंद स्वराज में उकेरा था। वह पहले से ही आश्वस्त थे कि शिक्षा का शुरुआती केंद्र परिवार ही होना चाहिए

गांधीजी अनुभवों और प्रयोगों के सहारे शिक्षा की एक सच्ची व्यवस्था विकसित करना चाहते थे। वह ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे, जिसका सपना उन्होंने हिंद स्वराज में उकेरा था। वह पहले से ही आश्वस्त थे कि शिक्षा का शुरुआती केंद्र परिवार ही होना चाहिए और टॉल्सटॉय फ़ार्म एक बड़े संयुक्त परिवार की तरह ही चल रहा था। साझा रसोई थी, जो इसलिए संभव हो पायी क्योंकि मांसाहार करने वालों ने वहां रहने के दौरान मांसाहार बंद कर दिया था। रसोई महिलाओं की देखरेख में थी। बच्चे बारी–बारी से उन महिलाओं का सहयोग करते थे। अक्सर गांधीजी भी उनकी सहायता के लिए आ जाते थे। पूरा समुदाय, महिलाएं और बच्चे सभी, फ़ार्म में, सब्ज़ियों के खेत में और वर्कशॉप में काम करते थे। कालेनबाख के साथ काम करने में बच्चों को ख़ूब मज़ा आता था। उन्होंने बच्चों को परिश्रम का पाठ पढ़ाया। वह बच्चों के साथ लतीफ़ेबाज़ी का माहौल और दोस्ताना व्यवहार भी बनाए रखते थे। कालेनबाख के नेतृत्व में सभी मिलकर साफ़–सफ़ाई करते थे। वहां बढ़ईगीरी एवं चप्पल बनाने का काम भी चलता था। कालेनबाख ने ख़ुद को प्रशिक्षित किया था और गांधीजी की बारी आने पर उन्होंने गांधीजी को भी चप्पल बनाना सिखाया। शारीरिक काम करने और सादा स्वास्थ्यवर्धक भोजन से बच्चों का विकास अच्छा हुआ। बीमारियों का वजूद लगभग नहीं था। जोश में आकर लोग शरारतें भी कर बैठते थे, जिससे कभी–कभी काम का भी नुक़सान होता था। लेकिन ऐसी चीज़ों का असर लंबे समय तक नहीं ठहरता था। फ़ार्म में स्पष्ट नियम था कि बच्चों को कोई ऐसा काम नहीं सौंपा जाएगा जो काम उनके शिक्षक स्वयं न करते हों। शिक्षकों को उनके हर काम में बच्चों के साथ जुटना पड़ता था। इस तरह, सारा कामकाज ठीक–ठाक चलता रहा, हालांकि बच्चों के लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था। जोहानसबर्ग स्कूल में बच्चों को और कुछ नहीं बल्कि केवल तीन आर (पढ़ना, लिखना और अंकगणित) सिखाए जाते थे। टॉल्सटॉय फ़ॉर्म में नियमित रूप से कक्षाएं चलती थीं, दो या तीन

पीरियड रोज़ाना। सारे पीरियड दोपहर बाद लगते थे। सुबह काम करने के बाद शिक्षक एवं बच्चे, सभी खुले आसमान तले प्रायः ऊंघते रहते थे। लेकिन एक परेशानी थी। गांधीजी और कालेनबाख ही बच्चों को सबसे अधिक पढ़ाते थे परंतु उन्हें सप्ताह में कम से कम दो दिन जोहानसबर्ग में देने पड़ते थे और उनके बाद ऐसे बहुत कम लोग थे, जो पढ़ाने का काम संभाल सकते थे। फिर भी कुछ काम अच्छे हुए। गांधीजी ने ख़ुद महसूस किया कि तमाम कमज़ोरियों के बावजूद यह स्कूल ही सत्याग्रह संघर्ष का सबसे ठोस परिणाम था। उन्होंने अनपढ़ तमिल बच्चों को तमिल सिखाने का जिम्मा ख़ुद संभाल लिया, ताकि वे अपनी भाषा में पढ़–लिख सकें। गांधीजी ने जेल में तमिल तो सीखी थी लेकिन वे तमिल बोलना ज़्यादा नहीं जानते थे। इस मामले में तो वे बच्चे ही गांधीजी से अधिक जानते थे। जब तमिल बोलने वाले गांधीजी से मिलने आते थे, तो ये बच्चे दुभाषिए का काम करते थे। गांधीजी अपनी अज्ञानता को छिपाने का कोई प्रयास नहीं करते थे। बाद के वर्षों में, मैं भी सेवाग्राम में नई तालीम का प्रशिक्षण लेने वाले शिक्षकों को अक्सर याद दिलाती रहती थी कि उन्हें अपनी अज्ञानता को कभी भी छिपाना नहीं चाहिए। जब भी ऐसा मौक़ा पड़े, तो हमें बेझिझक कहना चाहिए कि मुझे ये नहीं पता, आओ मिल कर जानें? यह ईमानदारी शिष्यों का मन जीत सकती है, जैसा कि गांधीजी ने किया था। भाषा के अलावा स्कूल में अंकगणित और सुलेख की भी कक्षाएं चलती थीं। गांधीजी अपनी बेढंगी लिखावट पर हमेशा अफ़सोस करते थे और मानते थे कि सुंदर लिखावट के बिना शिक्षा अधूरी है। बाद के वर्षों में जब गांधीजी को राजकुमारी अमृत कौर और महादेव देसाई जैसे सुंदर, साफ़ और आकर्षक लिखावट वाले कुछ सचिव–सहायक मिल गए, तो उन्हें निश्चित ही संतोष मिला होगा। स्कूल में सामान्य ज्ञान, इतिहास, भूगोल, विज्ञान और अन्य विषयों की कक्षाएं भी चलती थीं। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि इन विषयों को स्पष्ट, सुगठित क़िस्से–कहानियों और दिलचस्प चर्चाओं के ज़रिए ही पढ़ाया जाना चाहिए। अपने अनुभव के आधार पर उनका कहना था कि बच्चे अपनी आंखों की बजाय कानों से ज़्यादा जल्दी और ठीक से सीखते हैं। लिहाज़ा, स्कूल में किताबें तो थीं परंतु पाठ्यपुस्तक शायद ही कोई थी। कुछ किताबें इस्लाम और पारसी धर्म के बारे में थीं। कुछ नोट्स हिन्दू धर्म के मूलभूत तत्त्वों के बारे में थे, जो गांधीजी ने अपने बच्चों के लिए तैयार किए थे। सभी धर्मों की कक्षाओं में सारे बच्चे आते थे। स्कूल का सूक्ति वाक्य स्पष्ट था : सभी धर्मों के लिए बराबर सम्मान और अपने धर्म से वफ़ादारी। इस तरह टॉल्सटॉय फ़ार्म में धार्मिक मतभेदों को लेकर कोई झगड़ा नहीं था। ये सब कुछ तो शारीरिक और मानसिक शिक्षा के लिए था। गांधीजी मानते थे कि आत्मा की शिक्षा पवित्र ग्रंथों से नहीं मिलती, बल्कि यह तो जीवन और आचरण से आती है। बाद में, भारत आने के बाद उन्होंने एक बार कहा था कि सारे बड़े सत्य सभी धर्मों में समान हैं और उनको किताबी शब्दों के ज़रिए नहीं, बल्कि शिक्षक के आचरण से ही सीखा जा सकता है। बच्चों ने गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी के कई भजन सीखे, जिनका संगीत और काव्य बच्चों के दिमाग़ के पार जाकर कही गहरायी में उन्हें छूता था। लेकिन सबसे ज्यादा ज़ोर आचरण, परस्पर सेवा, साझेदारी, सौजन्य और उद्यमिता के आध्यात्मिक गुणों पर था। और ये आध्यात्मिक गुण, बड़ों के प्रेरक उत्साह, प्यार और शुचिता के ज़रिए बच्चों को सिखाए नहीं जा सकते बल्कि उन्हें अपनाया जाता है। ये वरिष्ठ लोग औपचारिक शिक्षक हों या न हों, आसपास

के बच्चों के नज़रिए और उनकी आकांक्षाओं को आकार देते हैं। टॉल्सटॉय फ़ार्म में ऐसे ही स्त्री–पुरुष थे। मसलन, कुछ सत्याग्रहियों ने अपनी ईमानदारी और साफ़गोई से अधिकारियों का दिल इस क़दर जीत लिया था कि चोरी के मामलों की सुनवायी के बावजूद उन्हें बिना जमानत रिहा कर दिया गया और तय तारीख़ को अदालत में हाज़िर हो जाने के उनके आश्वासन को मान लिया गया था। जब टॉल्सटॉय फ़ार्म से लौटते हुए, उनमें से कुछ लोगों की जोहानसबर्ग जाने वाली ट्रेन छूट गयी, तो स्टेशन मास्टर ने उनको दौड़ते हुए देख लिया और उनके लिए ट्रेन रुकवा दी। उसका यह कृत्य, उनकी सौजन्यता एवं दोस्ताना व्यवहार का ही फल था। फ़ार्म स्कूल अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। स्थापना के एक साल बाद ही गांधीजी और जनरल स्मट्स के बीच समझौता हो गया और सत्याग्रह समाप्त कर दिया गया। कॉलोनी से परिवार निकलकर अपनी सामान्य ज़िंदगी में जाने लगे। वहां रुक जाने वालों में से अधिकतर मूल रूप से फ़ीनिक्स के ही रहने वाले थे और कुछ समय बाद वे भी वापस चले गए। दो या तीन साल बाद मगनलाल गांधी के नेतृत्व में फ़ीनिक्स के यही बच्चे गांधीजी और कस्तूरबा से पहले भारत आए थे। 1915 की फरवरी में, जब गांधीजी स्वयं भारत आए, तब ये बच्चे लोग शांति निकेतन में थे। गांधीजी की प्रभावी वाणी और उन बच्चों की उपस्थिति ने ही शांतिनिकेतन की बड़ी रसोई में आत्म–निर्भरता के उस प्रयोग को प्रेरणा दी, जिसे कविवर रवीन्द्रनाथ ने स्वराज की कुंजी कहा था।

इस तरह, नई तालीम के बीज दक्षिण अफ़्रीका में ही बो दिए गए थे। गांधीजी शिक्षा के साथ अपने इस निजी प्रयोग को एक प्रकार के नॉस्टैलजिया के साथ याद करते थे। उन्होंने अपने इस अनुभव पर ख़ूब विचार किया और 25 साल बाद, जब एक पूरी पीढ़ी गुज़र चुकी थी, तब जाकर 1937 में उन्होंने भारतीय राष्ट्र के सामने स्कूलों के बारे में अपना नज़रिया पेश किया। शायद गांधीजी को गोपाल कृष्ण गोखले – जिन्हें वह जनसेवा के क्षेत्र में अपना गुरु मानते थे, का वह कथन याद था, जो उन्होंने टॉल्सटॉय फ़ार्म की यात्रा के समय कहाः ''मैं कभी कोई काम हड़बड़ी में नहीं करूंगा। मैं उसके बारे में सोचूंगा, उसको अभिव्यक्त करने का केंद्रीय विचार और भाषा क्या होनी चाहिए, इसके बारे में, मैं ख़ूब विचार करूंगा।'' गांधीजी भी अपने केंद्रीय विचार और स्कूलों के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति के बारे में लगातार चिंतन–मनन करते रहे।

इस तरह, नई तालीम के बीज दक्षिण अफ़्रीका में ही बो दिए गए थे। गांधीजी शिक्षा के साथ अपने इस निजी प्रयोग को एक प्रकार के नॉस्टैलजिया के साथ याद करते थे। उन्होंने अपने इस अनुभव पर ख़ूब विचार किया और 25 साल बाद, जब एक पूरी पीढ़ी गुज़र चुकी थी, तब जाकर 1937 में उन्होंने भारतीय राष्ट्र के सामने स्कूलों के बारे में अपना नज़रिया पेश किया।

साभार– नई तालीम की कहानी से,
मार्जोरी साइक्स, (1988), नई तालीम की कहानी, अनुवाद : श्री प्रकाश, क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

मंथन

नई तालीम का नया संकल्प

शिवदत्त

गांधीजी ने अपने जीवन दर्शन व समाज दर्शन के साथ ही साथ देश व समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तदनुसार शिक्षा को एक स्वरूप प्रदान किया। क्योंकि गांधीजी का यह स्पष्ट विचार था कि किसी भी प्रकार का परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा में परिवर्तन लाना आवश्यक है। गांधीजी के अनुसार अहिंसक सामाजिक क्रांति लाने के लिए 'नई तालीम' एक अमोघ एवं अचूक अस्त्र था।

परन्तु इस देश का दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हमारे नीति–निर्माताओं द्वारा शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन लाने का विचार तक भी नहीं किया गया, व्यापक फेर बदल की तो बात ही छोड़िए। गांधीजी ने 1931 में लंदन की एक सभा में यह चुनौती दी थी कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से कोई एक शताब्दी में भी मेरे देश को केवल साक्षर करके ही दिखा दे, शिक्षित बनाने की बात को तो छोड़िए। आज शिक्षाशास्त्रियों से लेकर आम आदमी तक, सभी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की निःसारता का अनुभव कर रहे हैं परन्तु विकल्प के अभाव में उसे ही ढोते रहने के लिए अभिशप्त हैं।

गांधीजी ने अपने शिक्षा संबंधी तीस वर्षों के निरंतर प्रयोग से प्राप्त अनुभव के

आधार पर, नई तालीम की शिक्षा पद्धति को देश के सामने रखा। इसके फलस्वरूप 1937 से 1958 तक के देश में चले व विकसित हुए उसके स्वरूप से एक विशुद्ध शिक्षा प्रणाली का विकल्प देश के सामने आया। ज़रूरत उसको देश व्यापी बनाने की थी, परन्तु तमाम कारणों से यह कार्य न हो सका।

देश व समाज की वर्तमान दशा को देखते हुए, नए जोश व नए संकल्प के साथ नई तालीम को देश में पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता, अनेक शिक्षाशास्त्री महसूस कर रहे हैं। नई तालीम का विचार, दर्शन तथा पद्धति के साथ ही शैक्षणिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से एक परिपूर्ण विचार है, यह बात राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई बार सिद्ध हो चुकी है। पिछले अनुभवों की निधि हमारे पास है तथा सेवाग्राम, वेड़छी, अनुगुल, गांधी ग्राम सहित अन्य स्थानों में इस पर अमल भी हो चुका है। इसके अलावा देश में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश भी है, क्योंकि वह देश व जन आकांक्षाओं को पूरा करने में बुरी तरह असफल सिद्ध हो चुकी है। ये सब देश में नई तालीम को लागू करने के लिए अनुकूल स्थितियां हैं।

परन्तु आज नई तालीम को यदि पुनः नए संकल्प के साथ लागू करना हो, तो हमें यह गंभीरता पूर्वक विचार करने की ज़रूरत है कि आज नई तालीम की देश में क्या जगह बची है और कैसे उसे नया मोड़ दे सकते हैं। नई तालीम की शिक्षा पद्धति में क्या–क्या परिवर्तन करने आवश्यक होंगे? जैसा कि आचार्य राममूर्तिजी कहते हैं कि आज तमाम दुनिया में जीवन पर्यंत शिक्षा की बात चल रही है। सहभागी शिक्षा के द्वारा जन–जन को जगाने की बात की जा रही है। आज ज़रूरत है कि नई तालीम के द्वारा विकेंद्रित अर्थव्यवस्था तथा सहभागी शिक्षण का स्वरूप निखरकर सामने आए। क्या यह संभव है? वह आगे कहते हैं कि नई तालीम के सामने आज हिंसामुक्त परिवार, समाज और सरकार बनाने की चुनौती है। क्या नई तालीम इसे स्वीकार करेगी?

आज नई तालीम पर विचार करते समय, यह एक यक्ष प्रश्न है कि प्राप्त प्रवाह में रहने के लिए नई तालीम पद्धति में अनुकूलन को स्वीकार करें या अपनी निर्धारित सही दिशा में प्रवाह को बहाने के लिए प्रचंड प्रयास किया जाए? यदि अनुकूलन को स्वीकार करना है, तो यह भी किस समय तक। अनुकूलन करने का क्या परिणाम हो सकता है, इस पर भी सोचना होगा। क्योंकि जो दिन–रात स्वदेशी का जाप कर रहे हैं, वे विद्या मंदिर भी व्यावसायिक दृष्टिकोण व मैकाले के शिक्षा उद्देश्य का परित्याग नहीं कर पा रहे हैं, बल्कि कहना होगा कि इन विद्या मंदिरों का उद्देश्य भी धनोपार्जन ही है, न कि चरित्रवान इंसानों का निर्माण।

आज के समय में, वर्तमान शिक्षा पद्धति ने लोगों की आकांक्षाओं को ख़ूब बढ़ा दिया है और लोगों की सोच भी बदली है। इस बदली हुई सोच के लोगों में, नई तालीम के प्रति तड़प व स्वीकार्यता किस तरह पैदा की जाए कि उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति इसके द्वारा हो। यह नई तालीम के सामने एक समस्या है। आज भूमंडलीकरण के दौर में जब बाज़ार तथा बाज़ारवाद, जो कि शिक्षा के क्षेत्र में घुस चुका है, नई तालीम को इससे निपटने के लिए कौन–कौन से नए अस्त्रों व रणनीतियों की आवश्यकता होगी। आज शिक्षा की दुकानें खुल गई हैं, उसमें वही जा सकते हैं, जिनकी जेब में पैसा है। इस संदर्भ में व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में नई तालीम की क्या

भूमिका होगी? अंबानी–बिड़ला समिति की रिपोर्ट 'ए पोलिसी फ्रेमवर्क फ़ॉर रिफ़ार्म्स इन एज्यूकेशन' में मुख्य सिफ़ारिश उच्च शिक्षा के निजीकरण की है ताकि शिक्षा के क्षेत्र में बाज़ार का विकास हो सके। नई तालीम को इसका भी हल ढूढ़ना होगा, क्योंकि शिक्षा के बाज़ारीकरण से उत्पन्न होने वाले सामाजिक–सांस्कृतिक दुष्परिणामों की चिंता अगर की जाए, तो भयावह स्थिति बनती है।

वर्तमान संदर्भ में नई तालीम के अंतर्गत किन–किन उद्योगों को शामिल करना उचित होगा? इन उद्योगों द्वारा शिक्षा किस तरह की दी जा सकेगी? क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि उद्योग की शिक्षा ही प्रधान भी जाए और चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का प्रधान लक्ष्य गौण हो जाए।

नई तालीम में वर्तमान संदर्भों के अनुरूप क्या–क्या और कौन–से परिवर्तन आवश्यक हैं, उनकी उपयोगिता व परिणामों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही उचित निर्णय लेना श्रेयस्कर लगता है, क्योंकि पूर्व के अनुभव बहुत अच्छे नहीं रहे हैं।

नई तालीम की शिक्षा योजना में निहित स्वावलंबन के प्रश्न पर भी गंभीरता पूर्वक विचार करना आवश्यक है। आज के परिप्रेक्ष्य में, क्या स्वावलंबन को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है? यदि हां, तो किस तरह के व किस सीमा तक के स्वालंबन की, इस पर भी ध्यान देना होगा। स्वावलंबन किस तरह का होगा, यह भी सोचना आवश्यक है। स्वावलंबन विद्यालय, ग्राम या समाज के स्तर पर होगा, यह भी सोचना आवश्यक है। हालांकि सेवाग्राम के विद्यालय का अनुभव, जिसके विस्तृत आंकडे उपलब्ध हैं, यह प्रमाणित करता है कि शिक्षा में स्वावलंबन संभव है। स्वावलंबन के प्रश्न पर विचार करते समय यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि गांधीजी ने शिक्षा के स्वावलंबन के विचार के साथ ही यह भी कहा था कि विद्यालय में उत्पादित होने वाली वस्तुओं को सरकार ख़रीदेगी, न कि विद्यालय को बाज़ार के बीच जाना होगा। आज बाज़ारवाद के ज़माने में इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक लगता है।

यह सत्य है कि नई तालीम का लक्ष्य 'सर्वोदयी समाज रचना' अहिंसा मूलक, शोषण विहीन, सरकार निरपेक्ष, समाज के अनुरूप शिक्षा का निर्माण करना है। परंतु यह विचारणीय प्रश्न है कि आज के माहौल में उक्त समाज रचना का मेल बैठाने के लिए, क्या–क्या समझौते करने आवश्यक होंगे? या कि इन समझौतों की सीमा क्या होगी? इस सबमें कंप्यूटर या मोबाइल आदि का स्थान क्या होगा? इसके साथ सादगी, समता, स्वावलंबन की जगह कितनी होगी? कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा में नई तालीम दर्शन की भूमिका कितनी होगी और क्या उसे बदलना भी है या नहीं, यह सोचना होगा।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की विफलता के फलस्वरूप पूरे देश के कोने–कोने में वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोग उभर रहे हैं। उनमें समन्वय स्थापित करने, उनका समर्थन करने तथा उन्हें व्यापक समाज के समक्ष प्रस्तुत करने और उनमें नई तालीम के तत्त्व को दाख़िल करने के लिए क्या–क्या करना चाहिए। क्योंकि यह नई तालीम के सामने चुनौती भी है और अवसर भी। आज कंप्यूटर युग में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की अपेक्षा अंग्रेज़ी का बोल–बाला बढ़ा है। इसको दूर करने में, नई तालीम की क्या भूमिका हो सकती है? इस संदर्भ में वैकल्पिक शिक्षा का प्रयोग कर रहे सभी प्रयोगवीर मिलकर समन्वित रूप से क्या प्रयास कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में या यूं कहें कि स्वतंत्रता मिलने के बाद, शिक्षा में स्वावलंबन या उद्योग के द्वारा शिक्षा का माहौल क्यों नहीं रहा, इस पर विचार करना आवश्यक है। इस परिस्थिति को किस तरह बदला जा सकता है, जिससे नई तालीम के पक्ष में माहौल तैयार हो। इसके लिए क्या–क्या करना आवश्यक होगा यथा– आंदोलन, पंचवर्षीय या दसवर्षीय योजना, नमूने के विद्यालय आदि तरीक़ों पर विचार हो सकता है। क्योंकि यह लगातार महसूस किया जाता रहा है कि भले ही पूर्व की भांति, बुनियादी, उत्तर बुनियादी या उत्तम बुनियादी विद्यालय न चलाए जा सकें, पर नई तालीम का मूल विचार आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। विशेषकर उस परिस्थिति में, जबकि पढ़े–लिखे बेकारों की संख्या दिनों–दिन बहुत बढ़ती जा रही है। बेकार नवयुवक व नवयुवतियां आपराधिक या असामाजिक गतिविधियों में पड़कर देश का बहुत बड़ा नुक़सान कर रहे हैं। यह सब शिक्षा से ही बदला जा सकता है। इसलिए कोई न कोई रास्ता निकालना नितांत आवश्यक है।

कोई भी शिक्षा प्रणाली उस समाज की जीवन दृष्टि के अंग के रूप में व्यवहार्य हो सकती है। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा भारतीय जीवन दृष्टि से उसकी आत्मा बननी चाहिए थी। जब कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था पाश्चात्य अर्थात् गांधीजी के शब्दों में आसुरी जीवन दृष्टि का परिणाम है। इसे बदलने के लिए ही गांधीजी ने नई तालीम के रूप में देश के सामने अपनी सर्वोत्तम कृति रखी थी। परन्तु जिन लोगों पर देश संभालने की ज़िम्मेदारी आई, वे या तो इसे लागू करना नहीं चाहते थे या वे इसे समझ ही न पाए, अथवा इसे लागू करने लायक, उनमें चरित्र व हिम्मत नहीं थी। कुछ भी हो उन्होंने इसे चलने नहीं दिया।

सेवाग्राम आश्रम, वर्धा (महाराष्ट्र) में कार्यरत एवं गांधी साहित्य लेखन में सक्रिय हैं।

परीक्षा

राग तैलंग

हम सब दिल के मरीज़ हैं
ऐसा हमें शक़ हुआ परीक्षा के दिन

बदल जाता था हमारा समूचा व्यक्तित्व उस दिन

हम एक–दूसरे से छुपा रहे थे विषय की महत्त्वपूर्ण जानकारियां
कोशिश कर रहे थे ऐसे–ऐसे अध्यायों की आड़ लेकर
जिससे लगे कि हम इस द्वंद्व युद्ध में पटखनी दे सकते हैं उसी साथी को
जिसके साथ कितनी तो बार गलबहियां डालकर
लंबी सड़क पर चलते हुए दूर किया था अपना अकेलापन

कितना बदल गया ऐसा रिश्ता परीक्षा के दिन!

चाकू की तेज़ धार से भी ख़तरनाक़ था
परीक्षा में असफल हो जाने का डर
जो कई बार
रेल की पटरियों या टिक ट्वेंटी या फिनाइल के विकल्पों को
आज़माने को मजबूर करता

हमें कभी पता नहीं चला
किसके विरुद्ध छिड़ी थी जंग
जो मांएं विदा करती थीं हमें
पेन–रबर–पेंसिल जैसे हथियारों की
ठीक–ठीक हालत के बारे में तस्दीक करते हुए

बडा तक़लीफ़देह था ऐसा इम्तहान
जिसमें हम जो जानते थे वह नहीं पूछा जाता
बल्कि कोशिश ये दिखती
जो हम नहीं जानते वह पूछा जाए

हमें ही हमारी बुद्धि पर तरस खाने को
मजबूर किया जाता परीक्षा के द्वारा

परीक्षा हॉल में
प्यास या पेशाब लगने जैसी सबसे स्वाभाविक क्रियाएं
संदेह का कारण बन जाती
मुज़रिम की निगाह से देखे जाते हम
और हमारे वही पूजनीय शिक्षक
एक पल को क़ातिलों के पैरोकार मुंसिफ से लगते

वहीं उड़न दस्तों पर सवार होकर अचानक आते थे
मैकाले की परीक्षा व्यवस्था के आतंकवादी पहरुए
जो ध्वस्त करते थे ज़ेहन में घुसकर
हमारे आत्मविश्वास का किला

परीक्षा देकर भारी क़दमों से वापस लौटते हुए
हम सोचते थे
अगर ईश्वर या खुदा का सहारा न होता तो
किसके भरोसे छोड़ते
परीक्षाफल आते तक का वह क्रूर और जानलेवा समय

तथाकथित रूप से सफल होकर
परीक्षा के मकड़जाल से
बाहर आ चुकने के बाद भी
हम पहचान नहीं पाए
अपने दुश्मन को और
आज हम भी विदा कर रहे हैं
अपने लाड़ले अभिमन्यु को देहरी पर खड़े होकर

अब कैसे बताएं साफ़–साफ़
कौरवों के बारे में
जाओ बच्चो जाओ
कुरुक्षेत्र की ओर
समय हो रहा है।

बी.एस.एन.एल., मध्यप्रदेश में कार्यरत शिक्षा एवं सामाजिक सरोकारों पर कविताएं लिखने में संलग्न।

विश्लेषण

गांधी का कर्म बोध

किशोर संत

गांधीजी का जीवन मानव आत्मा की स्वचेतना और संपूर्णता की ओर एक पुरातन और अखंड यात्रा की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। कमोबेश और विविध रूप में सारी मानव चेष्टाएं जीवन की गुणवत्ता और सार्थकता को बढ़ाने में लगी रहती हैं। परन्तु कभी–कभार एक व्यक्ति का जीवन अपने में एक युग विशेष में, एक संपूर्ण लोक की उभरती चेतना और ऊर्जा का समावेश करता है। एक नए पुरुषार्थ का स्रोत बनकर न केवल इतिहास की दिशा बदलता है वरन् वह मानव चेष्टा का स्तर भी उठा देता है। और भावी पीढ़ियों के लिए नए प्रयोगों की संभावनाएं खोल देता है।

इस युगपुरुष का युगकर्म उसकी अपनी संस्कृति से अवश्य प्रभावित होता है। साथ ही यह प्रयास मानव आत्मा की विभिन्न अभिव्यक्तियों में से एक ही हो सकता है और इस आधार पर इसकी नियति नहीं है कि यह तत्काल अथवा आगे चल के सर्वमान्य हो। समय–समय पर अपने अस्तित्व की स्पष्ट या धुंधलाई झलकें पाने के बावजूद मानव जाति अपनी अंतिम नियति को नहीं जान सकती। आज प्रमाण की कमी नहीं है कि मानव जाति एक ऐसे स्वरचित मार्ग पर चल रही है जिसका परिणाम सर्वनाश हो सकता है। इसके बावजूद कुछ आशाजनक संकेत नज़र आते हैं कि इस भंवर के बीच में भी मानव जाति की कश्ती डूबने से बच जाएगी। इनमें एक संकेत है अहिंसक साधनों और मानव कार्यकलापों में हिंसा के स्रोतों की खोज। यही गांधीजी की प्रासंगिकता है और आज इसका महत्त्व उस समय से भी अधिक है, जब गांधीजी ने अपनी आस्था को जिया और इसके आधार पर विविध भौतिक तथा आध्यात्मिक कर्म किए।

वर्तमान युग का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व इसकी औद्योगिक–यांत्रिक व्यवस्था है जो एक संभ्रांत वर्ग की भोगवादी समृद्धि और सुरक्षा के लिए कार्यरत है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय अर्थ और राजतंत्र की तैयारी की व्यवस्था का रूप लेते हैं, जो एक ओर प्राकृतिक संसाधनों का नाश करती है और दूसरी ओर सामाजिक सम्बन्धों का विघटन करती है।

हमारे समाने महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि गांधी कर्म का आधुनिक युग के साथ क्या संबंध है? इसका उत्तर खोजने से पहले, हमें इस युग की विशेषता को समझना होगा। वर्तमान युग का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व इसकी औद्योगिक–यांत्रिक व्यवस्था है जो एक संभ्रांत वर्ग की भोगवादी समृद्धि और सुरक्षा के लिए कार्यरत है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय अर्थ और राजतंत्र की तैयारी की व्यवस्था का रूप लेते हैं, जो एक ओर प्राकृतिक संसाधनों का नाश करती है और दूसरी ओर सामाजिक सम्बन्धों का विघटन करती है। गांधीजी

ने अपने विलायत और दक्षिण अफ़्रीका के अनुभव के आधार पर, इस सभ्यता द्वारा मानवता के लिए पैदा किए गए ख़तरों को समझा, उन्होंने 'हिंद स्वराज' में इसे शैतानी सभ्यता का नाम दिया, इसकी लालसा प्रवृत्ति का खंडन किया और इसके आंतरिक गुण–दोष को समझकर इसे नकारने का संकल्प किया।

इस समझ और संकल्प के साथ गांधीजी ने भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिक धरातल का पुनः समर्थन किया और अपना सारा जीवन, आधुनिकता से आगे नए मानव जीवन के लिए सिद्धांत और कर्म की खोज में, आविष्कार और संघर्ष में लगाया।

यह कैसे घटित होता है? यह कैसे संभव है कि एक अकेला व्यक्ति सारे युग को, एक सभ्यता को चुनौती दे? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए व्यक्ति, समाज और वास्तविकता की भौतिक अवधारणाओं से आगे देखना पड़ता है। इसमें इस तथ्य को पहचानना ज़रूरी है कि मानव व्यक्तित्व अपने आपको इस रूप में देखता है, अपनी भौतिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करता है और अपनी आत्मा स्वरूप है, जिसमें परमात्मा का अंश है। इस दृष्टि से काल विशेष में, जब कोई व्यक्ति अपने आपको इन बंधनों से मुक्त कर, मानवता और सृष्टि के लिए बेहतर मूल्यों का सृजन करता है, तो वह अपने जीवन को एक बहुत ऊंची ज़िम्मेदारी के स्तर पर ले जाता है। यहां से वह अपने युग की प्रचलित सांसारिक समझ और मूल्यों को चुनौती देता है।

यूनानी मिथकों में एक चरित्र है, जिसका नाम है सिसीफस, इसे शाप है कि उसे अपने आगे एक भारी चट्टान धकेलते हुए पहाड़ के शिखिर पर पहुंचना है। यह चरित्र और चित्र आधुनिक मनुष्य की दशा को दर्शाते हैं, जिसके अंतर्गत मानव के पास इसके अलावा कोई चारा नहीं कि वह अपने द्वारा रचित इस औद्योगिक सभ्यता के भार को ढोए, इसे जिए और इससे आगे निकले।

गांधी कर्म का स्रोत–बिंदु यह आत्मबोध है। यहां एक साथ कई द्वैत पक्षों का समावेश है। तत्कालिक और अनंत, स्व एवं विश्व, भौतिक तथा आध्यात्मिक, वास्तविक और संभावित। यह गांधी दृष्टि केवल वास्तविकता का स्थिर प्रतिबिंब मात्र नहीं है। इसमें समझ के साथ–साथ प्रकाश प्रदान करने की शक्ति है। परन्तु यह दोनों भी वास्तविकता को बदलने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। बदलाव के लिए आवश्यक है एक दायित्वपूर्ण संबंध, प्रतिज्ञा, जो पलायन और ग़ैर ज़िम्मेदारी के विपरीत है। गांधीजी का जीवन, वर्तमान युग एवं सभ्यता के साथ जूझने की महान् प्रतिबद्धता दर्शाता है। इस संदर्भ में अंग्रेज़ी के साहित्यकार विद्याशंकर नैपाल ने यह टिप्पणी की है कि गांधीजी ने अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान योरोप की औद्योगिक वास्तविकता में कोई रुचि नहीं दिखाई। ऐसे प्रतीत होता है कि गांधीजी ने जान रस्किन और लियो टॉल्सटॉय से प्रभावित होकर आधुनिक औद्योगिकी के चरित्र को स्वीकारने के बजाय इसे पूर्णतः नकार दिया। यूनानी मिथकों में एक चरित्र है, जिसका नाम है सिसीफस, इसे शाप है कि उसे अपने आगे एक भारी चट्टान धकेलते हुए पहाड़ के शिखिर पर पहुंचना है। यह चरित्र और चित्र आधुनिक मनुष्य की दशा को दर्शाते हैं, जिसके अंतर्गत मानव के पास इसके अलावा कोई चारा नहीं कि वह अपने द्वारा रचित इस औद्योगिक सभ्यता के भार को ढोए, इसे जिए और इससे आगे निकले। गांधीजी ने मानव आत्मा को इस बोझ से मुक्त रखने का रास्ता सुझाया।

20वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में औद्योगीकरण के विस्तार और गति में बढ़ोतरी हुई है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक ताने–बाने, मानव संवेदनशीलता और प्राकृतिक संसाधनों की अपूर्व क्षति हुई है। गांधीजी का मानना था कि मानवता और प्रकृति इस भार को सहन नहीं कर पाएगी। इसलिए इस यांत्रिक औद्योगीकरण की गति को कम करना होगा और इसे मानवता के मापदंडों के अनुसार मर्यादित करना होगा। यही कसौटी समाज की व्यवस्थाओं के लिए लागू करनी होगी। गांधीजी द्वारा इस युग की यांत्रिक और व्यवस्थागत वास्तविकताओं को नकारने का परिणाम यह है कि उनके अनुयायियों के समक्ष ये यक्ष प्रश्न आज भी खड़े हुए हैं। गांधी के बाद भारत के विकास और राजकाज में ये अनुयायी अपनी नीति और भूमिका दोनों ही स्पष्ट नहीं कर पाए।

गांधी कर्म की यही विशेषता है कि यह धर्मपरायण है, जिसमें आध्यात्मिकता और व्यावहारिकता का समावेश है। स्वतंत्रता की ओर कार्यरत होकर भी इसमें सत्य और अहिंसा का कठोर अनुशासन है। इस द्वारा प्रवाहित अपार जनशक्ति एक ओर यथास्थिति को बदलने में लगती है, तो दूसरी ओर यह नई समाज व्यवस्था की रचना के सटीक प्रयोग करती है।

क्या इसका यह अर्थ है कि मानव प्रगति में गांधीजी और गांधीजन एक अजूबे की तरह ही देखे जाएंगे। गांधीजनों की निराशा और बिखराव से कुछ ऐसा लगता है, परन्तु यह ध्यान में रखने योग्य है कि गांधीजी द्वारा प्रायोजित मूल्यों और सिद्धांतों का क्रियान्वयन संस्थागत स्वरूप पर निर्भर नहीं रहता। आध्यात्मिक दृष्टि से इसे आत्मा की अपनी स्वतंत्रता और संपूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भारतवासियों की अपनी नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर जागृति और स्वतंत्रता के लिए आंदोलन का रूप है। गांधी कर्म की यही विशेषता है कि यह धर्मपरायण है, जिसमें आध्यात्मिकता और व्यावहारिकता का समावेश है। स्वतंत्रता की ओर कार्यरत होकर भी इसमें सत्य और अहिंसा का कठोर अनुशासन है। इसके द्वारा प्रवाहित अपार जनशक्ति एक ओर यथास्थिति को बदलने में लगती है, तो दूसरी ओर यह नई समाज व्यवस्था की रचना के सटीक प्रयोग करती है।

यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या इस प्रकार का आध्यात्मिक, अनुशासित और नैतिक प्रयोग जनसाधारण आम लोगों द्वारा सामूहिक रूप से किया जा सकता है? इसका एक उत्तर तो भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से मिलता है। 50 से 60 के दशकों में संयुक्त राज्य अमेरिका में अफ़्रीकी मूल के लोगों द्वारा किया गया नागरिक अधिकार प्राप्ति का आंदोलन भी इसका स्पष्ट उदाहरण है। परन्तु इसके मर्म को समझने के लिए जनसाधारण के चरित्र और उसकी संस्कृति को देखना होगा।

संभ्रांत और अधिनायकवादी दृष्टि से आम लोग के बारे में, यह अवधारणा है कि वह अंधविश्वास और आदत से ग्रस्त, समान प्रवृत्ति वाला जनसमूह है, जिसे कमोबेश ज़ोर–ज़बर्दस्ती से ही व्यवस्थित किया जा सकता है। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि हर मनुष्य में दैविक अंश है।

'आदम को ख़ुदा मत कहो, आदम ख़ुदा नहीं
लेकिन ख़ुदा के नूर से आदम जुदा नहीं'

हजारों वर्षों की व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के अंतर्गत मनुष्य की आत्मा मानव संबंधों, कलाकृतियों, दर्शन और नैतिकता में

विभिन्न स्वरूपों में प्रकट हुई है। समुदायों के रूप में मनुष्य स्वभाव तथा आवश्यकता दोनों के आधार पर नैतिकता का धनी है। परंतु मनुष्य में सृजन और आविष्कार करने की भी शक्ति है और इसके आधार पर प्रतिभाशाली और सत्ता सम्पन्न होने की प्रवृत्ति है। इस प्रयास में मनुष्य समुदाय से अलग होकर दूसरों पर नियंत्रण कर, अपने आप में सत्ता का केन्द्र बन जाता है। जब यह स्वनिर्मित सत्ता नैतिकता या धर्मविहीन रूप लेती है, तो एक ऐसा संभ्रांत वर्ग उभरता है, जो शैतानी या मानवता–विरोधी प्रवृत्ति का होता है। यह अधर्मी सत्ता एक छोटे समुदाय में, राष्ट्र में, समाज में या पूरे विश्व तक फैल सकती है। यह आज की स्थिति है। जैसे–जैसे इसका विस्तार बढ़ता है, इस सत्ता को बनाए रखने के लिए संस्थागत व्यवस्थाएं स्थापित होती हैं। अपने आकार और पैठ को बढ़ाने के लिए मानव को अपनी गिरफ़्त में रखने वाली व्यवस्थाएं अपने आपको धार्मिक और नैसर्गिक दर्शाने लगती हैं। अपनी सत्ता को व्यवस्थित और स्वीकार्य कराने के साथ–साथ शासक साम, दाम, दंड, भेद के अस्त्रों को काम में लेता है।

भारत में जनसाधारण के चरित्र के बारे में एक अन्य दृष्टि हमें बंगाली लेखक ताराशंकर बंद्योपाध्याय से मिलती है। उन्होंने अपने उपन्यास 'गणदेवता' की भूमिका में भारत के ग्रामीण जीवन के बारे में लिखा है; ''भारत के ग्रामीण जीवन की परम्पराएं सामान्यतया अन्य औद्योगीकरण पूर्व कृषि आधारित समाजों की तरह ही हैं, परन्तु पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, दाव्रिड़, उत्कल, बंग के इस विशाल विस्तार के समाज में एक और व्यापक तत्त्व रहा है, जिसे अनुशासन कह सकते हैं। यह अनुशासन नीति पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि इसमें न्याय–अन्याय का बोध कर सकते हैं। यह अनुशासन नीति पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि इसमें न्याय–अन्याय का बोध है। यह बोध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जीवन के हर पहलू का अभिन्न अंग है। पूरी सामाजिक परंपरा इस बोध पर आधारित रही है। इसी बोध के कारण प्राकृतिक विविधता के बावजूद भारत के ग्राम–जीवन में तकनीकी और व्यावहारिक दृष्टि से एक आश्चर्यजनक समानता है।

गांधी कर्म जनसाधारण के इस अनुशासन एवं बोध पर आधारित था। हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या यह धर्म और नीति बोध, लालसा से प्रेरित हिंसक औद्योगिकी–सभ्यता के आक्रमण के सामने टिक पाएगा। क्या मानवता की नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति इस विनाशक प्रवाह को रोक पाएगी, या वह स्वयं इसका शिकार हो जाएगी? आज के हालात में कई ऐसे संकेत हैं, जिनसे यह लगता है कि आज की व्यवस्थाएं इन विनाशक शक्तियों को नहीं रोक पा रही हैं। हिंसक प्रवृत्तियों में बढ़ोतरी, हिंसा के बल पर विश्व पर आधिपत्य,

असीम उपभोग हेतु असीम उत्पादन और इसके द्वारा संसाधनों की क्षति, विश्वव्यापी तापमान में वृद्धि जैसे पर्यावरणीय संकट इसके कुछ उदाहरण हैं, परंतु इस घोर अंधकार में कुछ आशा और विश्वास के बिन्दू भी हैं। इनमें मौलिक तथ्य यह है कि मानवता के आंतरिक गुण समाप्त नहीं किए जा सकते। मानव का धर्म और नीति बोध, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवहार में नष्ट होकर भी, मानव की संवेदना, विचार और संबंधों में टिका रहता है। जब मानव को इस घोर धर्म संकट का अहसास होता है, तो मानव चेतना और चेष्टा पुनः अपनी नैतिक शक्ति का सहारा लेकर अपनी सच्चाई की ओर बढ़ती है। आज भी इस संवेदना के आधार पर विश्व शांति, पर्यावरण सुरक्षा, सामाजिक न्याय और अपने संसाधनों पर अधिकार के संघर्ष एवं आंदोलन सक्रिय हैं। इन सबके साथ गांधीजी के विचारों और प्रयोगों को समझने के लिए विश्व भर में रुचि पैदा हुई है। गांधी विचार और कर्म की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक विशेषताओं और संस्थागत रूढ़ियों एवं कर्मकांड से परे, नए गांधी मार्ग के खोज की प्रबल सम्भावनाएं बनी हैं, जिन्हें स्वतंत्र साधकों द्वारा प्रशस्त किया जा सकता है।

जब मानव को इस घोर धर्म संकट का अहसास होता है, तो मानव चेतना और चेष्टा पुनः अपनी नैतिक शक्ति का सहारा लेकर अपनी सच्चाई की ओर बढ़ती है। आज भी इस संवेदना के आधार पर विश्व शांति, पर्यावरण सुरक्षा, सामाजिक न्याय और अपने संसाधनों पर अधिकार के संघर्ष एवं आंदोलन सक्रिय हैं। इन सबके साथ गांधीजी के विचारों और प्रयोगों को समझने के लिए विश्व भर में रुचि पैदा हुई है।

अंत में कुछ शब्द बुद्धिजीवियों के लिए। उन्हें अपने स्वधर्म के हेतु समसामयिक गांधी विचार की शक्ति को समझना होगा। विचार और वाणी के वाहक और पात्र के रूप में वह आत्मा की प्रेरणा के बहुत निकट है। मानवता के इस संकटकाल में उनका दायित्व है कि वे स्पष्टदृष्टा बनें और सत्य को निडर होकर मानवता के समक्ष रखें। यह कर्म अकादमी के बंद कमरों और गलियारों में नहीं किया जा सकता। सुकरात की तरह उन्हें चौराहों और चौपालों में विचरना होगा, जहां लोग ऐसे प्रश्न खड़े कर रहे हैं, जिनके विशालकाय उत्तर हैं।

मैं इस लेख को सुकरात की कुछ पंक्तियों से समाप्त करना चाहूंगा, जो यह दर्शाती हैं कि बुद्धि एवं आत्मा से प्रेरित मनुष्य कैसे प्रचलित मान्यताओं को चुनौती देता है। इन वाक्यों से यह भी सामने आता है कि वह पुरातन मनीषी और हमारे युग का महात्मा, दोनों अपने युगकर्म में समान प्ररेणा के धनी थे।

''और मैं विश्व में विचरता हूं, एक ही ध्येय लेकर, यह जानने के लिए कि कौन सा नागरिक या प्रदेशी गुणी और समझदार है। अगर वह ऐसा नहीं है, तो मैं उसे दर्शाता हूं कि वह ऐसा नहीं है, मैं इस कर्म में इतना मगन रहता हूं कि मेरे पास दुनियादारी के लिए या मेरे स्वार्थ के लिए कोई अवकाश नहीं। भगवान से प्रेरित इस सेवा कार्य में लगे रहने के सिवाय मेरे पास कोई चारा नहीं।''

''फिर मैं एक से दूसरे व्यक्ति के पास गया, मुझे लगा कि वह मुझे शत्रु मानता है और इससे मुझे पीड़ा हुई और डर भी लगा, परन्तु मेरे लिए मेरे कर्म की अनिवार्यता थी, मेरा मानना था कि दिव्य वाणी को सबसे पहले रखना ही होगा।''

ग्रामीण उत्थान के लिए प्रतिबद्ध, सेवा मंदिर व आस्था जैसी स्वैच्छिक संस्थाओं के साथ जुड़ाव रहा है। गांधी विचार व दर्शन में रुचि।

नज़रिया

टिकाऊ विकास में नई तालीम की भूमिका

महेश नारायण दीक्षित

शिक्षा गुणवत्तायुक्त जीवन की पहली शर्त है। शिक्षा के द्वारा प्रेरित होकर मानवजाति की कठिनाइयों को हल करने के लिए अनेक प्रयोग किए गए, जिनके परिणामस्वरूप मानवजाति ने कल्पनातीत विकास किया है। यह विकास मानवजाति की सिद्धियों का जहां साक्षी है, वहीं यह अनेक समस्याओं का जन्मदाता भी है।

पारिस्थितिकीय चुनौती 21वीं सदी की सबसे बड़ी समस्या है। वस्तुतः इस समस्या की उत्पत्ति 19 वीं एवं 20 वीं सदी के अंधाधुंध भौतिक विकास की प्रक्रिया में निहित है। औद्योगीकरण के प्रचंड प्रवाह में हमारा अस्तित्व डूबने लगा है।

1909 में जब महात्मा गांधी ने 'हिंद स्वराज' की रचना की, तब यह स्थिति इतनी भयावह न थी। औद्योगीकरण के फलस्वरूप सद्यःप्रसूत सुख–सुविधाओं की झांकी लोगों को मिलने लगी थी। लोग इसके अधिकतम आस्वादन के लिए लालायित थे दूरदृष्टा महात्मा गांधी के मन में कुछ और ही चल रहा था, जिसके प्रतिफल के रूप में 'हिंद स्वराज' को देखा जा सकता है। महात्मा ने 100 वर्ष पहले ही विकास की इस दिशा को 'कुधारा' के रूप में संबोधित किया था।

आज विकास की इस अंधी दौड़ में पूरी सृष्टि अपने–आप को असहाय महसूस करने लगी है। अनेक विकृतियां यथा–पारिस्थितिकीय तंत्र का विशृंखलन, वातावरणीय प्रदूषण, सामाजिक बिखराव, जातीय विद्वेष, अमीरी–ग़रीबी के बीच चौड़ी होती खाई, मूल्यहीनता, सांस्कृतिक बिखराव एवं उपभोगवादी मानसिकता इत्यादि के बीच जब न केवल मानव बल्कि पूरी सृष्टि के अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़ा हो गया है। अब विकास की इस प्रक्रिया को पुनः परिभाषित करने की बात की जाने लगी है।

इस संदर्भ में अनेक प्रश्न उठते हैं यथा, विकास की प्रक्रिया का स्वरूप क्या हो? विकास की संकल्पना को कैसे व्याख्यायित किया जाए? उसमें शिक्षा की भूमिका क्या हो? तथा क्या आज की हमारी प्रचलित शिक्षा व्यवस्था इन चुनौतियों को हल करने में सक्षम है?

इन प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि हमारी तथाकथित विकास की प्रक्रिया, किन आधारों पर टिकी है? सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर यह सुनिश्चित होता है कि इस विकास की प्रक्रिया के मूल में भौतिकता, उपभोगतावादी संस्कृति एवं 'आपन कुशल, कुशल जगमाही' जैसी स्वार्थकेंद्री मानसिकता है। आज मानव आधिकाधिक सम्पत्ति प्राप्त कर उसका उपभोग करना चाहता है। इसके परिणास्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र पर विपरीत असर पड़ा है और जो ग्लोबल वार्मिंग, मौसम चक्र में अवांछनीय परिवर्तन, जीव सृष्टि के वैविध्य में कमी, सामाजिक

बिखराव जैसी समस्याओं के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

विकास की वर्तमान प्रक्रिया से सशंकित बुद्धिजीवी वर्ग अब 'टिकाऊ विकास' की परिकल्पना पर बल देने लगा है। वातावरण एवं विकास के वैश्विक आयोग (1987) ने टिकाऊ विकास के संप्रत्यय को स्पष्ट करते हुए कहा है, ''टिकाऊ विकास, विकास की वह प्रक्रिया है, जिसमें मानव अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति इस तरीक़े से करता है कि भावी पीढ़ियां भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति बिना किसी समस्या के कर सकें।''

उपर्युक्त परिकल्पना से जुड़े हुए कुछ ऐसे बिन्दु हैं, जिनका अनुपालन ही टिकाऊ विकास के संप्रत्यय को यथार्थ बना सकता है। इसमें–

- प्रकृति के जैविक–अजैविक घटकों का आदर।
- मूल्य प्रधान जीवन।
- सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण।
- प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन।
- प्रकृति के तत्त्वों का जीवननिर्वाह के लिए त्यागपूर्ण उपयोग।
- साक्षर, स्वस्थ एवं सृजनात्मक जीवन पर बल, इत्यादि को देखा जा सकता है।

उपर्युक्त स्थिति की प्राप्ति तभी संभव है, जब व्यक्ति को इन तथ्यों से अभिमुख कराया जाए तथा तद्संदर्भित जीवन कौशलों का व्यक्ति में विकास किया जाए। निःसंदेह शिक्षा ही वह माध्यम है, जो व्यक्ति की सोयी चेतना को जगा सकती

है, समस्याओं से अवगत करा सकती है तथा क्षमता प्रदान कर, हल शोधन की दिशा में अग्रसर कर सकती है। शिक्षा ही टिकाऊ विकास में उपादेय जीवन निर्वाह के कौशलों का व्यक्ति में विकास कर सकती है।

परन्तु मैकाले की विचारधारा पर आधारित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि प्रतिस्पर्धा पर आधारित यह शिक्षा व्यवस्था, भौतिकता एवं उपभोक्तावाद को ही बढ़ावा देती आयी है। ऐसी परिस्थिति में एक सक्षम शिक्षा व्यवस्था को अंगीकार करने की ज़रूरत होगी। इस संदर्भ में नई तालीम को एक आशा की किरण के रूप में देखा जा सकता है।

सन् 1937 में जब, महात्मा गांधी ने नई तालीम के संप्रत्यय को वर्धा सम्मेलन में प्रस्तुत किया, तब टिकाऊ विकास जैसे शब्दों से, इसको जोड़कर नहीं देखा गया था। फिर भी सांस्कृतिक विरासत, मनोवैज्ञानिक अधिगम, चरित्र–निर्माण, पारस्परिक सहयोग, त्यागपूर्णजीवन एवं स्वावलंबन के आधार पर टिकी यह शिक्षा व्यवस्था पहले से ही कहीं ज़्यादा आज के परिप्रेक्ष्य में उपादेय है।

नई तालीम, जिसे बुनियादी शिक्षा भी कहा जाता है, की विशेषताओं की यदि सूची बनाई जाए, तो वह लंबी बनेगी। परन्तु उसमें सामाजिक सद्भाव, स्वावलम्बन, सर्वोमुखी विकास, मूल्यनिष्ठा एवं प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की कला जैसे कुछ लक्षणों को विशेषतः उल्लेखित किया जा सकता है, जो कि टिकाऊ विकास के लिए अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकृत हो चुके हैं।

महात्मा गांधी का जीवन सर्वदा मूल्यों की उपासना को ही समर्पित रहा, जिसका स्पष्ट परिपाक हमें नई तालीम की शिक्षा व्यवस्था में मिलता है। गांधीजी ने नई तालीम को देश के चरित्र–निर्माण का साधन माना था। नई तालीम शिक्षा का अभ्यासक्रम एवं विविध कार्यक्रम, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, परिश्रम, सर्वधर्म समभाव जैसे मूल्यों का सिंचन कर व्यक्ति के चरित्र को उदात्त बनाते हैं। निश्चितरूप से इन मूल्यों से युक्त व्यक्ति सृष्टि के जैविक–अजैविक घटकों का न केवल सम्मान करेंगे बल्कि प्रकृति, समाज एवं मानव के पारस्परिक संबंध को भी मज़बूत बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

अपनी आजीविका निर्वाह के लिए स्व–श्रम की बात नई तालीम का मूलमंत्र है। जिसमें मात्र रोटी की ही नहीं बल्कि उत्तम स्वास्थ्य की भी गारंटी निहित है। आज का मानव स्वभावतः लालची एवं आलसी है। वह बिना परिश्रम के बहुत कुछ पाना चाहता है, जिससे भ्रष्टाचार एवं स्वार्थ की प्रवृत्ति का जन्म होता है। इस समस्या के निराकरण के संदर्भ में शारीरिक श्रम के प्रशिक्षण से युक्त नई तालीम अधिक कारगर है।

नई तालीम में मात्र बौद्धिक शिक्षा को प्रश्रय नहीं दिया गया है, यह तो मानव के सर्वोमुखी विकास की संकल्पना के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति को कुछ ऐसे सृजनात्मक कार्य में दक्ष किया जाता है, जो व्यक्ति को न केवल स्वावलंबी बनाता है बल्कि उसमें सृजन के प्रति प्रेम को भी विकसित करता है। इस प्रकार नई तालीम में शिक्षित व्यक्ति समाज में सृजनात्मक जीवन जीता है, जो समाज को संगठित कर सामाजिक तथा मानसिक वातावरण के प्रदूषण को दूर करने में सहायक है।

नई तालीम में सद्भाव एवं सामंजस्यपूर्ण जीवन के विकास के लिए सामुदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योगों का विकास, सफ़ाई, आर्थिक समानता की प्राप्ति जैसे रचनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया जाता है। ये कार्यक्रम टिकाऊ विकास के पल्लवन एवं पोषण में अत्यधिक सहायक हैं।

आज यदि हम टिकाऊ विकास की परिकल्पना को साकार करना चाहते हैं और मानव अस्तित्व को बचाना चाहते है, भावी पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो हमें नई तालीम को अपनाना ही होगा। क्योंकि टिकाऊ विकास की प्राप्ति में यह शिक्षा व्यवस्था अत्यधिक कारगर है।

गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

बदलाव की चिंगारी

अनुराग बेहार

हमारे देश में शिक्षकों के बारे में बहुत कुछ गलतफहमियां पनप चुकी हैं। लेकिन इसके बावजूद, यह दास्तान है राजस्थान और कर्नाटक राज्य के अध्ययन केन्द्रों के शिक्षकों के जीवन्त समूहों की, जिनमें ललक है खुद सीखने की और अपने बच्चों को सिखाने की। न उन्हें छुट्टियों की परवाह है, न समय की और न ही मौसम के मार की। बस, उन्हें चिन्ता है कि वे अपनी कक्षा में बच्चों को कैसे अच्छे तरीके से सीखा सकते हैं। देखिए, इस बात की मिसाल इस आलेख में।

मालपुरा के शिक्षकों का एक दल

बदलाव की चिंगारी किसी संस्थागत ढांचे के माध्यम से होती है जो बौद्धिक आदान–प्रदान और दक्षतावर्धन को बढ़ावा देती हुए कहीं न कहीं मूल्यों को बनाए रखने में मददगार होती है।

आइए, मालपुरा के शिक्षकों की एक दास्तान आपको सुनाता हूं। एक कमरा है, जो लगभग 20 फीट चौड़ा और 30 फीट लंबा है। उस कमरे में हम कुल मिलाकर लगभग 40 लोग होंगे, 34 सरकारी स्कूल के शिक्षक और 6 अवलोकनकर्ता। सभी ज़मीन पर बिछी दरी पर विराजमान थे।

बाहर धधकती हुई सपाट ज़मीन, कांटेदार बबूल की झुरमुट के दृश्य और तापमान 44 डिग्री सेल्सियस है। अंदर और भी ज्यादा गर्मी महसूस हो रही है– 50 डिग्री के माफ़िक। पंखे बेजान से हैं, वजह बिजली का न होना। जयपुर के दक्षिण में टोंक जिले के मालपुरा विकास खंड मुख्यालय की जनसंख्या लगभग 30,000 हज़ार होगी। मालपुरा के आसपास के गांवों और कस्बों के लोग इस भारी तपन को सहन करने के अभ्यस्त हैं, यही वजह है कि अन्य सभी को छोड़कर, मैं अकेला ही पसीने में तरबतर हुआ जा रहा हूं।

यहां, यह समूह सुबह के दस बजे एकत्र हो चुका है। ये लोग आसपास के गांवों और कस्बों से विकास खंड मुख्यालय पर आ चुके हैं। कुछेक लोग 50 किलोमीटर की यात्रा करके यहां पहुंचे हैं। इस दल के लोग छः छोटे समूहों में बंटकर काम में लगे हुए हैं। छोटे समूहों में एक पठन सामग्री बांटी गई, जो सूक्ष्मदर्शी के इस्तेमाल करने के तरीकों पर और इससे कैसे करामातों को खोजा जा सकता है, यह जानने पर आधारित है।

प्रत्येक छोटे समूह के पास एक सूक्ष्मदर्शी, कांच की पट्टी, रंजक आदि है साथ ही आलू, मिर्च और डबरे का पानी है, जिनकी स्लाईड बनानी है। तकरीबन 15 मिनट में पठन सामग्री पढ़ने के बाद कमरे में गतिविधि करने का जज्बा पैदा हो चुका है। आलू, मिर्ची वगैरह को महीन काट–काटकर उन्हें रंजक से रंगा जा रहा है और सूक्ष्मदर्शी को रोशनी की ओर घुमाया जा रहा है। जब बढ़िया स्लाईड बने, तो सूक्ष्मदर्शी में देखने के लिए थोड़ी धक्कम–धक्का

के चलते, दूसरे समूहों को बड़े गर्व से दिखाया जा रहा है। सूक्ष्मदर्शी में जो देखा उसके चित्र बनाए जा रहे हैं और पठन सामग्री में बने चित्रों से तुलना की जा रही है। डबरे के गंदे पानी में विभिन्न कोशिकीय संरचनाओं या तैरते–उतराते सूक्ष्म जीवों को पहचाना जा रहा है।

समूहों में जो करामाती स्लाइड्स बनाई, मैं उनका गवाह था और एक समूह से दूसरे समूह में अपने आपको खींचता हुआ जा रहा था। मैं यह देखकर विस्मित हूं कि उस भट्टी की माफिक तप रहे कमरे में लोग बड़े स्वच्छंद व धैर्य के साथ, अपनी ऊर्जा को बरकरार रखते हुए व्यस्त हैं। अलबत्ता, शिक्षकों की बैठक सुबह 10 से 12 बजे तक तय की गई थी मगर उन्होंने काम करना बंद नहीं किया। वे 12:45 के बाद तक भी अपनी गतिविधि को जारी रखे हुए थे।

अब वे कुछ समस्याओं के हल को लेकर एक गोल घेरे में बैठ चुके थे। शिक्षकों के बीच के ही गोयल और पाठक नामक दो शिक्षकों ने आगे की कार्यवाही का जिम्मा लिया। उन्होंने सत्र को बड़ी शिद्दत और बेहतर ढंग से समझाया। इस सत्र का मकसद था कि उन्होंने क्या सीखा और उसे बच्चों के साथ कक्षाओं में कैसे इस्तेमाल करें। लगभग 30 मिनट की गहन चर्चा में वे 12 बिंदुओं पर पहुंचे, कुछ खास जो विषय से संबंधित (रंजक ताज़े हों) थे और कुछ बुनियादी, मसलन आपसी सहयोग से गतिविधियां बेहतर रूप से सीखी जाती है।

मुझे उनके साथ 15 मिनट तक बातचीत करने का अवसर दिया गया था और इसके लिए वहां मुझे बैंगलूरु से पहुंचना था। सुबह 10:00 बजे प्रारंभ हुआ सत्र यहां तक कि बीच में बिना किसी चाय की छुट्टी के 1:30 पर खत्म हुआ। 46 डिग्री सेल्सियस तापमान की झुलसाने वाली गर्मी शिक्षकों के चेहरे पर दिखाई दे रही थी, उन्होंने अपने–अपने बैग उठाए और अपने दुपहिया वाहनों पर सवार होकर घर की ओर चल दिए।

मालपुरा विकास खंड में शिक्षकों के दो स्वैच्छिक मंचों का यह समूह है। यह समूह 2009 में बना था, जिसे शुरुआत में मेरे सहयोगी देवेंद्र ने संगठित किया था, जिसमें बाद के दिनों में शिक्षकों का स्वामित्व बढ़ता गया। मालपुरा विकास खंड में लगभग 800 शिक्षक हैं, जिनमें से इन दो स्वैच्छिक मंचों में लगभग 150 सरकारी स्कूल के शिक्षक हैं।

शिक्षक इन सत्रों में स्वैच्छिक रूप से भाग लेते हैं– न सरकार की ओर से न अधिकारी की ओर से आदेश होता है। यहां शिक्षक स्कूल समय के अलावा आकर भाग लेते हैं। जिस सत्र के बारे में मैंने बताया है, वह छुट्टी के दिन आयोजित किया गया था। अपने घरों से कोसों दूर, जहां सार्वजनिक यातायात की बदतर सुविधाओं के चलते, प्रतिकुल हालातों का सामना करते हुए, अपनी जेब से दुपहिया वाहनों के पेट्रोल का खर्च वहन करते हैं। न कोई सम्मान, न ही कोई ईनाम या पुरस्कार फिर भी इस मंच का हिस्सा बनते हैं।

मैंने उनसे एकमात्र सवाल पूछा और वह था –" आखिर छुट्टी के दिन अपनी जेब से पैसा खर्च करके, झुलसाने वाली गर्मी में, जहां किसी ने आने को कहा नहीं है और कोई पुरस्कार भी नहीं मिल रहा है आप लोग क्यों आते हैं?" दरअसल, वे महीने में दो बार इस मंच की बैठक में आते हैं।

मेरे काम में, मुझे यह सौभाग्य मिला है कि मैं आए दिनों में पूरे देश में इस तरह के लोगों से मिलता रहता हूं। अपने सवाल का जो जवाब मैंने मालपुरा में सुना, वही मैंने पूरे देश में सुना वह सरल सा कुछ इस प्रकार है–"हम यहां इसलिए आते हैं क्योंकि हम कुछ सीखना चाहते हैं ताकि अपने विद्यार्थियों को बेहतरी से सिखा सकें।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान के दो जिलों में ऐसे 15 शिक्षकों के मंच हैं, जिसमें 800 शिक्षक सदस्य हैं, जो इन दो जिलों की सरकारी शिक्षकों की तादाद का

15 फीसदी हैं। पूरे देश में हम सैकड़ों की तादाद में इस प्रकार के समूहों में शामिल हैं और इनमें से कई मंच संभवतः दूसरे संगठनों के द्वारा संचालित होते हैं, जिनमें सरकारी निकाय शामिल हैं।

ज़ाहिर है कि लोगों में जिनमें से ये शिक्षक ही हैं, उनमें बहुत अच्छाइयां हैं, जो बहु संख्या में शिक्षा में अनवरत रूप से सुधार के केंद्र में हैं। बदलाव की चिंगारी किसी संस्थागत ढांचे के माध्यम से होती है जो अनवरत रूप से बौद्धिक आदान–प्रदान और दक्षतावर्धन को समर्थन देती है साथ ही कहीं न कहीं मूल्यों को बनाए रखने में और आपस में जोड़कर रखती है।

आइए, भला–बुरा कहने के बजाय, समर्थन और सहयोग में इन महिलाओं और पुरुषों के इस सहयोग में हम भागीदार बनें। ये वे लोग हैं, जो आशा की किरण जगाए हुए हैं। हालांकि यह यात्रा लंबी और कठिन ज़रूर है।

सुरपुर के शोले

सुरपुर का अध्ययन केंद्र दर्शाता है कि कैसे बौद्धिक विनिमय एवं सामाजिक समर्थन को बढ़ावा देने वाली देशज व संजीदा बिरादरी का सृजन किया जा सकता।

यह बात केंबावी अध्ययन केन्द्र की है, जहां यह चर्चा चल रही थी। शिक्षकों का एक समूह अध्ययन केंद्र पर एकत्र होकर कंप्यूटर की बदहाली को लेकर शिकवा–शिकायत कर रहा था। मैं यह सुनकर भाव विभोर हो रहा था कि उनकी शिकायत की वजह थी कंप्यूटर में फिल्म बनाने का साफ्टवेअर काम नहीं कर रहा था। दरअसल, उन शिक्षकों में से कुछ फिल्म बनाना, संपादित करना और उसमें अपनी आवाज़ देना चाह रहे थे।

अध्ययन केंद्र में जो शिक्षक आए थे, सभी के सभी सरकारी स्कूलों के थे जो केंबावी के आसपास के थे। जब उनकी शिकायत का दौर पूरा हो गया, तो मैंने पूछा–"आप लोग फिल्म का निर्माण अपने छात्रों के लिए क्यों नहीं करते? जिस घटना का बयान कर रहा हूं, वह जनवरी महीने की है।

केंबावी, तहसील सुरपुर मुख्यालय से लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर है, जो उत्तर–पूर्वी कर्नाटक के यादगिर जिले में पड़ता है। यह क्षेत्र छत्तीसगढ़, उड़िसा या राजस्थान के वंचित भाग से कोई अलग नहीं है। अधिकांश लोग कर्नाटक की छवि में बैंगलुरु की चकाचौंध या कुर्ग की निर्बल एवं सुस्त रियासत से प्रभावित हैं, उन्हें उत्तर–पूर्वी कर्नाटक एक अलग ही देश के माफिक लगेगा। उत्तर–पूर्वी कर्नाटक के जिले, देश में वंचित जिलों की फेहरिस्त में आते हैं, जो मानव और सामाजिक विकास सूचकांक के आधार पर आकलित किए जाते हैं।

बहरहाल, मैं सुरपुर जून महीने में फिर से गया। भरी गर्मी में, वहां का परिदृश्य खतरनाक हो गया था। चारों ओर चट्टानी पहाड़ियां, आपको लगेगा मानो झुलसाने वाले शोले हों। सरकारी उर्दू प्राथमिक स्कूल के, पहली मंजिल पर मुझे ले जाया गया। इस स्कूल के एक कमरे में सुरपुर का अध्ययन केंद्र चलता है। यह स्कूल चट्टानी पहाड़ियों के बीच में है। एक पुरानी हवेली, दूसरे मकान से जुड़ी हुई है, जिसमें दो नए कमरे हैं, और इसी में स्कूल चलता है। भूल–भूलैया के रास्ते से छोटे–छोटे दरवाज़ों से होते हुए ऊंची–नीची सीढ़ियों को पार करते हुए स्कूल तक जाना पड़ता है।

अध्ययन केंद्र में घुप्प अंधेरा था। दरअसल, एक फिल्म के प्रदर्शन के लिए अंधेरा किया गया था। कमरा शिक्षकों और मेरे साथियों से खचाखच भरा था। मेरे साथी मित्र उमाशंकर, जो मेरे साथ इस यात्रा मे थे, उन्होंने यह बात मुझसे पिछले छः महीनों से छिपाकर रखी थी। फिल्म प्रदर्शन की डेढ़ घंटे की घटना जैसे–जैसे आगे बढ़ रही थी कि मेरे साथ बैठे उमाशंकर आनंद और जोरशोर से खिलाखिला रहे थे।

मुझे बताया गया कि जब मैं जनवरी में यहां आया था और मैंने बच्चों की फिल्म बनाने का विचार

उनके सामने रखा था, उसे इन लोगों ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और दरअसल यही वे मुझे बताने जा रहे थे। किसी बैठक में कही गई बात को चुनौती के रूप में लेना, यह उनके व्यवहार और संवेदनशीलता को दर्शाता है।

वहां पर मुझे पांच फिल्में दिखाई गईं। प्रत्येक फिल्म सीधे–सीधे बच्चों के पाठ्यक्रम पर बनाई गई थी, जिसमें वे स्कूल में पढ़ा रहे थे। प्रत्येक फिल्म 4–5 मिनट की थी जो छोटे और सस्ते डिजिटल कैमरों से बनाकर अध्ययन केंद्र पर संपादित की गई थी। ये फिल्में पानी की कमी, कुम्हारी और परिवहन के विभिन्न तरीकों पर आधारित थी। इतना ही नहीं इन फिल्मों में एक छोटी एनिमेटेड कहानी भी थी, जो उन्होंने ही बनाई थी।

जो फिल्में बनाई गई, वे उम्दा थी। बेहतरी से सोचकर स्क्रिप्ट तैयार की गई, बढ़िया शॉट, बढ़िया आवाज़, संगीत और बहुत हद तक पेशेवर संपादन। इस बात पर भरोसा करना मुश्किल हो रहा था कि ये फिल्में सरकारी स्कूल के चंद शिक्षकों ने मिलकर बनाई है, जो सूरपुर के आसपास के गांवों और कस्बों में रहते हैं।

शिक्षकों में काफ़ी उत्साह था। शिक्षक जिनके बारे में हमारे देश में बहुत कुछ गलतफहमियां पनप चुकी हैं, वे फिल्म निर्माता बन चुके हैं। उनमें से प्रत्येक शिक्षक बता रहे थे कि फिल्में, कैसे उन्हें कक्षा शिक्षण में मदद कर रही हैं। वे बता रहे थे कि परिवहन वाला पाठ जो 45 मिनट के दो पीरियड़ में पढ़ाया जा रहा था, अब उसे फिल्म की मदद से प्रभावशाली ढंग से एक पीरियड में ही पूरा किया जाता है। फिल्म में मिट्टी के बर्तन बनाने की जटिलता, जिसमें मिट्टी इकट्ठा करने से लगाकर, बर्तनों को पकाने तक की प्रक्रिया सब कुछ देखने को था। गांव के कुछ तालाबों की आपस में तुलना, पानी की कमी के कारण, जीवंत रूप से समझ में आ रहे थे। इसी प्रकार की कई बातें फिल्मों के माध्यम से समझ में आ रही थी। फिल्म शो के बाद उन्होंने अपनी योजनाओं पर विमर्श किया कि कैसे अधिक से अधिक शिक्षकों और बच्चों को इसमें शामिल किया जाए।

फिल्में अपने आप में बढ़िया थीं, मगर शिक्षकों पर उनका असर कही अधिक गहरा और निराला था। फिल्म निर्माण की प्रक्रिया ने, शिक्षकों में एक आत्मविश्वास और जज्बा पैदा कर दिया था जो कहीं अधिक मायने रखता है। उन्होंने पाठ्यक्रम का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया है, जो अमूमन शिक्षाविदों की इच्छा पर निर्भर करता है। यह शिक्षकों की दक्षता संवर्धन की प्रभावशाली कवायद है जो मैंने देखी। तटस्थ होकर देखें, तो सचमुच टेक्नोलजी के कुछ प्रभावशाली इस्तेमाल में से यह भी एक तरीका है, जो अपने देश में मैंने वास्तविक होते देखा, जो तमाशा बनने के बजाय सही शिक्षा को आगे ले जाए।

मगर मेरा यह कहना है कि हम कहीं डिजिटल कैमरा वितरित करना शुरू न कर दें। यहां जो कुछ भी (और भी बहुत कुछ) हुआ है, वह अध्ययन केंद्र द्वारा सृजित, अनवरत संस्थाई जगह की बदौलत है, जो इस मसले का केंद्र है। हमारा तंत्र, शिक्षकों और अन्यों के लिए संस्थाई कड़ापन, सुपर केंद्रिकृत संरचना, दृष्टिकोण और इसी प्रकार का व्यवहार, उदासीनता, उपेक्षा और अप्रासंगिकता पैदा करता है। अध्ययन केंद्र इस व्यवस्था को नेस्तानाबूत करते हुए, देशज एवं जीवंत समाज में बौद्धिक आदान–प्रदान और सामाजिक समर्थन का सृजन करता है, जो कि बहुत कुछ हमारी व्यवस्था का हिस्सा रहे हैं।

इतना तो है कि इसमें बहुत समय लगेगा। सुरपुर की बात करें, तो यहां तक पहुंचने में आठ साल लगे हैं। इस मिसाल से यह साबित होता है कि शिक्षा में सुधार छोटे रास्ते से नहीं होता।

अज़ीम प्रेमजी फाण्डेशन के सीईओ तथा अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर हैं।
अंग्रेज़ी से अनुदित– कालू राम शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फाण्डेशन, देहरादून (उत्तराखण्ड) में कार्यरत।

बच्चों के शिक्षा अधिकार का मकड़जाल

जॉन कूरियन

हम कई दशकों से अपने यहां के सरकारी और निजी स्कूलों में अभावग्रस्त स्थितियों को सहते आए हैं, जैसे बच्चों से खचाखच भरी और संकड़ी कक्षाएं, पीने के पानी और शौचालयों का अभाव आदि। इस वर्ष की शुरूआत में, यहां तक कि देश की राजधानी में भी सरकारी स्कूलों को तंबुओं में चलाने की इज़ाजत दे दी गई। शिक्षा के अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई) जो कि 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ था, के तहत सभी स्कूलों को 3 वर्ष के भीतर अर्थात् 2013 तक मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करानी होगी। क्या हम शिक्षा के अधिकार (आर.टी.ई.) अधिनियम के इस अत्यंत सीमित दृष्टिकोण के लिए निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के निकट हैं?

अधिकारिक आंकड़ों का उपयोग करते हुए, नई तालिकाएं, यह देखने के लिए जारी की गई थीं कि भारत के हर राज्य के एक जिले में, जिसमें उस राज्य की राजधानी स्थित है, में कितने स्कूलों में इस अधिनियम में निर्दिष्ट किए गए आदर्श की कम से कम कितनी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं? इसमें सभी मौसमों के अनुकूल स्कूल की इमारत, सीमा–दीवार (बाड़), पीने का पानी, लड़कियों के लिए अलग शौचालय, रसोई की शेड और खेल का मैदान और ढलान–मार्ग आदि की सुविधा शामिल थीं। हमारे पास 28 राज्यों के (प्रत्येक राज्य का एक जिला) जिलों में स्थित लगभग 7100 सरकारी और निजी स्कूलों के आंकड़े उपलब्ध थे, जिनमें सन् 2012 (अप्रैल) तक केवल 18 प्रतिशत स्कूलों में उपर्युक्त सभी 6 सुविधाएं उपलब्ध कराई गयी थीं, इसमें सर्वोत्तम श्रेणी में 5 राज्यों के आंकड़ें 27ः से 57ः तक रहे हैं और सबसे कम निष्पादन श्रेणी वाले 5 राज्यों में यह स्थिति 1ः से 2ः के बीच रही है।

वास्तविक स्थिति, इससे भी अधिक बदतर होगी। उपर्युक्त अनुमानों में कम लागतवाले कई निजी स्कूलों, जिनके आंकड़े उपलब्ध नहीं है, को छोड़ दिया गया है। न तो ये स्कूल शिक्षा के अधिकार के अधिनियम की सन् 2013 तक पूरी की जानेवाली सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, जैसे कि अधिनियम में उल्लेखित शिक्षक–छात्र अनुपात का सिद्धान्त, जो फिलहाल सभी स्कूलों के केवल एक तिहाई से अधिक स्कूलों में पूरा होता है। इस बात को, जब तक हमारे शैक्षिक प्रशासक और राजनीतिक नहीं समझ लेतें, सभी स्कूलों को शिक्षक तथा सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवा पातें, तब तक अप्रैल 2013 की लक्ष्य तिथि को तो छोड़ हीं दें, सन् 2025 तक भी काफी सारे स्कूल शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अनुपालक नहीं हो पाएंगे। इस अधिनियम में पड़ोस के स्कूल के सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा के प्रावधान के संदर्भ में, यही लक्ष्य तिथि तय की गई है। स्कूल जाने की आयु वाले बच्चों की संख्या और उनके स्थान से संबंधित अलग–अलग अचूक आंकड़े, जिनका अभी अस्तित्व नहीं है, जो शिक्षा के अधिकार के

अधिनियम को लागू करने के लिए आवश्यक है।

सरकार द्वारा दिए गए नामांकन के आंकड़े अविश्वसनीय भी हैं (अकसर जानबूझकर टाले हुए) और साथ ही अधूरे भी, यहां तक कि आधारहीन नामांकित किए गए, परंतु स्कूल न जानेवाले छात्रों की गंभीर समस्या के बारे में, हमारे पास बहुत कम जानकारी है। परिणामस्वरूप हमारे पास स्कूल जानेवाले और न जानेवाले बच्चों के घटते–बढ़ते आंकडें हैं। यदि शैक्षिक आंकड़ों के संग्रहण और पड़ोस के स्कूलों की स्थापना की योजनाएं, जैसी बातों के लिए, हमने अलग और विश्वसनीय दृष्टिकोण नहीं अपनाया, तो हम अगले दशक के भीतर, अपने सभी बच्चों को नामांकित किए जाने वाले और स्कूल में उनकी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के लक्ष्य से बहुत पीछे रह जाएंगे। ऐसा लक्ष्य, जिसके बारे में हमारे संविधान निर्माताओं की उम्मीद थी, जो कि सन् 1960 तक पूरा हो जाना चाहिए था।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के हर महत्वपूर्ण क्षेत्र को, इसी तरह की संकल्पनात्मक स्पष्टता का अभाव, अविश्वनीयता व अपूर्ण आंकड़े की समस्याओं से सामना करना पड़ रहा है। इसी तरह राज्य, जिला और उप–जिला स्तर पर पर्याप्त नियोजन, सहायता और निगरानी तंत्र का अभाव है। परिणामस्वरूप, वंचित वर्ग के बच्चों की शिक्षा, अक्षम या विकलांग बच्चों की शिक्षा, मूल्यांकन, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वंचित छात्रों के लिए 25ः आरक्षण, स्कूल प्रबंधन समितियां और स्कूल विकास योजना, जैसी शिक्षा का अधिकार अधिनियम की आवश्कताओं और कार्यक्रमों को पूरा करने और उनको क्रियान्वित करने की प्रगति, अधिकांश राज्यों में दयनीय है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम की निधि संबंधी जिम्मेदारियां, संयुक्त रूप से केन्द्र और राज्य सरकारों पर हैं। परंतु इसकी योजना बनाने और उसका क्रियान्वयन करने के लिए मुख्यतः राज्य सरकार और स्थानीय सरकारी शैक्षिक निकाय जिम्मेदार हैं। प्रत्येक राज्य को, तत्काल इसके 3 वर्षों के क्रियान्वयन की जांच करने की ज़रूरत है। राज्य द्वारा तैयार की जानेवाली इस रिपोर्ट में, मापने योग्य परिणामों के साथ, कम से कम 2 वर्षों की ठोस सुधार की योजना शामिल होनी चाहिए।

चूंकि, समस्याएं और समाधान अलग–अलग होंगे, इसलिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम विषयक राज्य–विशिष्ट की विस्तृत रिपोर्ट का होना ज़रूरी है। उदाहरणार्थ, आंध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों में, आठवीं कक्षा माध्यमिक स्कूलों में शामिल है। इसलिए इसे उच्च प्राथमिकता देते हुए, उन्हें अपने सभी स्कूलों में आठवीं कक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा स्तर में शामिल करने की, समयबद्ध योजना बनाने की पहल करनी होगी। इसके बिना, आठ वर्षों की सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना, इन राज्यों के लिए ढांचागत रूप से संभव नहीं होगा।

राज्य की शिक्षा का अधिकार अधिनियम से सम्बन्धित रिपोर्ट, केवल सांख्यिकीय प्रस्तुति नहीं होनी चाहिए। महत्वपूर्ण यह है कि इसमें राज्य, जिला और उप जिला स्तर की शैक्षिक संस्थानों के, वर्तमान कामकाज की गंभीर समीक्षा होनी चाहिए और यह बताया जाना चाहिए कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम के जटिल मुद्दों के क्रियान्वयन की दृष्टि से उनकी क्या आवश्कताएं हैं।

राज्य की इस पहल में, मदद करने के लिए

एमएचआरडी, नेशनल कमीशन फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड राइट्स, एनसीईआरटी और नेशनल यूनिवर्सिटी फॉर एज्यूकेशन प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका है। राज्यों को विशेषज्ञों और शिक्षा का अधिकार मंच, नागरिक समाज समर्थन पहल जैसी संस्थाओं से सलाह लेनी चाहिए, जो वर्तमान में इस प्रकार के व्यापक आंकड़े संग्रहण में लगी हुई हैं।

इस वर्ष के अंत तक हर राज्य को अपनी रिपोर्ट का प्रारूप तैयार कर लेना चाहिए और उस पर टिप्पणी के लिए, उसे राज्य के भीतर और बाहर व्यापक रूप से भेजा जाना चाहिए। हर एक राज्य को अप्रैल 2013 तक अपनी अंतिम रिपोर्ट तैयार कर लेनी चाहिए, जिसे बाद में सार्वजनिक किया जाए। ये दस्तावेज प्रोफेसर बेटैली की अध्यक्षता में गठित नए शिक्षा आयोग के विवेचन में भी योगदान प्रदान करेंगे।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन के तीन वर्षों की समीक्षा करना, अधिकांश राज्यों के लिए कष्टदायक काम होगा, क्योंकि वे अपनी शैक्षिक संस्थाओं और कार्यक्रमों का इस प्रकार का गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन, पहली बार करेंगे। परंतु विस्तृत रूप से प्रसारित की जानेवाली, व्यापकरूप से समझने योग्य व ईमानदार रिपोर्ट तैयार करना, शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए बाध्यकारी व टिकाऊ आधार प्रदान करने और इस प्रकार सभी बच्चों को बराबरी की व पक्षपात रहित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले, को सुनिश्चित करने के लिए बहुत ज़रूरी है।

सेंटर फॉर लर्निंग रिसोर्सेस, पूणे, के निदेशक हैं। अभी शिक्षा के अधिकार पर काम कर रहे हैं।

जैसा मैंने सीखा

बुनियादी तालीम क्या है?

रामचन्द्र चौधरी

ग्राम चेतना केंद्र खेड़ी मिलक, जयपुर के शिक्षकों का जुलाई 2011 में प्रशिक्षण रखा गया। विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरि, उदयपुर में आयोजित इस प्रशिक्षण में एक प्रशिक्षणार्थी की बुनियादी शिक्षा के बारे में बनी समझ को यहां प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रशिक्षण का उद्देश्य यह था कि गांधीजी द्वारा सुझाई गई नई तालीम का प्रशिक्षण प्राप्त करना ताकि संस्था अपने कार्यक्षेत्र (जयपुर ज़िले की सांभर पंचायत समिति के पांच विद्यालय) में इसे लागू कर सकें और इसका लाभ बच्चों को मिले तथा वे जीवन में काम आने वाली तालीम हासिल कर सकें। इस हेतु अध्यापकों का प्रशिक्षण करवाना।

बुनियादी शिक्षा क्या है? ऐसी शिक्षा, जो जीवन में काम आए और जो मानव का बौद्धिक विकास, मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित करती हो, आजीविका उपयोगी, सांस्कृतिक संवर्द्धन एवं ज्ञान बढ़ाने के साथ ही जीवन के अनुभवों से सिखाती है और जो एक दूसरे को जोड़ती है, ऐसी शिक्षा को हम बुनियादी शिक्षा कहते हैं।

गांधीजी का मानना रहा कि नई तालीम एक ऐसी शिक्षा है, जो हमेशा नई रहती है कभी भी पुरानी नहीं होती। नई तालीम जीवन के लिए उपयोगी और आवश्यक तालीम है। इसमें व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में काम आने वाली शिक्षा स्वयं उस प्रक्रिया में भाग लेकर सीखता है, जिसे थ्री–एच हेड, हैंड और हार्ट के माध्यम से समझा जा

सकता है।

जब इन तीनों में तालमेल नहीं होगा तो शिक्षा हमेशा अधूरी रहेगी। गांधीजी का कहना था कि जब मेरी अंगुलियां चरख़े पर होती हैं, तो मेरा मन उसे एक

संगीत के रूप में स्वीकार करता है और मेरा दिमाग़ नई बातें सोचता है। जब केवल पढ़ाई कराई जाती है, तो यह ज़रूरी नहीं है कि उसको मेरा दिमाग़ समझे, मेरे कान सुनें या मेरी आंखें देखें।

इस प्रशिक्षण में प्रो. अनिल सद्गोपाल के बुनियादी शिक्षा के पर्चे पर की गई चर्चा से यह समझ में आया कि काम एवं शिक्षा के बीच घनिष्ठ संबंध होना चाहिए। काम से शिक्षा मिलनी चाहिए। आज हमारे सामने वैश्वीकरण, धार्मिक उन्माद और कट्टरवाद जैसी चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों का हम महात्मा गांधी की बुनियादी तालीम के ज़रिए हल खोज सकते हैं। हमें शिक्षा को उत्पादक काम से जोड़ना होगा।

प्रो. सद्गोपाल के अनुसार आज बुनियादी शिक्षा देना इतना आसान नहीं है। लेकिन इसे निरंतर प्रयास के द्वारा साकार किया जा सकता है। एनसीईआरटी के द्वारा तैयार दस्तावेज़ एनसीएफ 2005 ने भी बुनियादी शिक्षा के काम से ज्ञान के निर्माण के सिद्धांत की पैरवी की है। लेकिन वह भी इसे लागू नहीं कर पा रही है।

गांधीजी ने कहा कि देश की शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की हो, जिसका उपयोग देश के करोड़ों लोगों की भलाई के लिए हो। इसमें उत्पादन की बात हो और कहीं पर भी विनाश और हिंसा की बात न हो। गांधीजी ने बताया कि शिक्षा का उपयोग अच्छाई के लिए कम और दूसरों के ख़िलाफ़ अपने स्वार्थ के लिए ज़्यादा हो रहा है। यह इस शिक्षा की ख़ामी है जो दुनिया को ग़लत मार्ग पर ले जा रही है। इसलिए पढ़ाई को उत्पादन कार्य के साथ जोड़ा जाए। दूसरे शब्दों में, उत्पादन या उद्योग से पढ़ाई आनी चाहिए। इसके लिए हर स्तर पर पाठ्यक्रम तैयार किया जाए और उसे अमली जामा पहनाया जाए।

गांधीजी कोरे ज्ञानवाद के ख़िलाफ़ थे। इसका मुख्य कारण यह था की ज्ञानी व्यक्ति हाथ का काम नहीं करता, क्योंकि वह ज्ञानी है, वह दूसरे को काम बता सकता है लेकिन वह स्वयं काम नहीं करेगा। जबकि गांधीजी का मानना था कि काम से ज्ञान निकलता है, अनुभव से ज्ञान बढ़ता है।

यदि शिक्षा बच्चे की मातृभाषा में दी जाए, तो वह सबसे उपयुक्त तरीक़ा है। भाषा के मुद्दे पर बहुत सारे विवाद हैं। लेकिन बच्चा अपनी मातृभाषा को अच्छी प्रकार समझ सकता है। अतः प्रारंभिक शिक्षा अवस्था में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए। भाषा का इंसान के साथ घनिष्ठ संबंध है। भाषा के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

बुनियादी शिक्षा का मूलमंत्र अहिंसा है और अहिंसा के साथ यह शिक्षा रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का हल प्रस्तुत करती है। बुनियादी तालीम महात्मा गांधी के जीवन के 11 व्रतों या सिद्धांतों से जुड़ी हुई है :सत्य, अहिंसा, अभय, अस्वाद, अपरिग्रह, स्वावलंबन, आरोग्य, सर्वधर्मसंभाव, अस्पृश्यता, ब्रह्मचर्य एवं श्रम।

ग्राम चेतना संस्थान, खेड़ी मिलक, जयपुर में कार्य करते हैं।

डायरी

...जब बच्चों ने प्रयोग किया

शहनाज़ डी.के.

8 सितम्बर 2011

गैर सरकारी विद्यालय से सरकारी विद्यालय में जाना मेरे लिए एक चुनौती थी। क्योंकि मैं पहले ही सरकारी विद्यालय में काम करके सरकारी तंत्र से नाखुश थी। कई सालों तक एक उत्साह भरे वातावरण में (विद्या भवन में) काम करने के बाद दोबारा सरकारी माहौल में आना मेरे लिए किसी सज़ा से कम नहीं है। उदयपुर से 60 किमी दूर ग्रामीण विद्यालय में आए मुझे दो महीने गुज़र गए हैं मैं बच्चों के साथ अपने आप को भी समझाने की कोशिश कर रही हूं कि सब ठीक हो जाएगा। आज कक्षा में बच्चों को पढ़ाते-पढ़ाते मैं ऊब गई वही पुराना तरीका पाठ पढ़ो और प्रश्न करो, बच्चों को भी कैसे मज़ा आए। मैंने एक चंचल बच्चे से पूछा, क्या तुम्हारे पास चुम्बक है? उसने कहा, नहीं, परन्तु विद्यालय की अलमारी में रखा है जिस पर ताला है।

मैंने साथी अध्यापिका से पूछा, तो वह बोली, पड़ा है पर कोई विज्ञानवाला अध्यापक कभी आया ही नहीं, तो कौन उसका उपयोग करे। मैंने तुरन्त अलमारी की चाबियां निकाली और चुम्बक लेकर बाहर आ गई। कक्षा के सभी बच्चे मेरे पीछे कक्षा से बाहर आ गए और हक्के-बक्के देखने लगे, जैसे कोई आश्चर्य हो गया हो। बस फिर क्या था, प्रयोग होने लगा, चुम्बक पर क्या चिपकता है और क्या नहीं। कुछ लोहे की चीज़ें चिपकाने के बाद, मैंने कहा यह रेत जो पड़ी है, क्या इसमें कुछ ऐसा होगा जो चुम्बक पर चिपक जाए? जिन दो बच्चों के हाथ में चुम्बक था वे उसे रेत में घुमाने लगे, थोड़ी देर बाद देखा कि चुम्बक के किनारों पर कुछ छोटे-छोटे कण चिपके हैं। बच्चों को बड़ा मज़ा आया कि ये कहां से आए, सभी अपने अनुभव के आधार पर बताने लगे कि रेत में कुछ टूट गया होगा या फिर जहां से रेत आती है वहां पर ये कण मिलाए जाते होंगे वगैरह वगैरह। लेकिन अब उनके पास चर्चा का एक मुद्दा था। सोचने, और उसका जवाब ढूंढ़ने के लिए एक प्रश्न उनके दिमाग में था। मेरे साथियों को लग रहा था कि मैडम बच्चों को रेत में खेलने ले गई है और यूं ही समय खराब कर रही है। लेकिन मैं बहुत खुश थी कि आज मैं, बच्चों को पाठ रटाने से बाहर लाने में सफल हो सकी। अब सरकारी वातावरण में कुछ न कुछ तो नया करने की हिम्मत जुटा ही लूंगी।

राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, कानोड़, उदयपुर में अध्यापिका हैं।

वर्कशीट

आकाश दर्शन

गिरीश शर्मा

यह वर्कशीट रात्रि कालीन आकाश में कुछ चमकीले तारों, मुख्य तारा मण्डलों तथा ग्रहों की पहचान करने के लिए बनाई गई है। यहां कुछ सरल गतिविधियां दी गई हैं जिनकी सहायता से हम स्वयं इन आकाशीय पिण्डों की पहचान कर सकते हैं। थोड़े से अभ्यास के बाद, हमें यह आसान लगने लगेगा और फिर हमारी आकाश में अन्य पिण्डों को जानने की जिज्ञासा बढ़ेगी। अगर बायनाक्यूलर (दूरबीन) की व्यवस्था कर लें तो, आकाश दर्शन और भी बढ़िया ढंग से कर सकेंगे। फिलहाल इस वर्कशीट को करने के लिए किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं है। बस, एक टार्च और नोट बुक हम अपने साथ रखें ताकि रात्रि के अवलोकनों को उसमें लिख सकें।

आकाश दर्शन कब करें– किसी भी रात्रि को जब आकाश बादल रहित हो, हम अवलोकन कर सकते हैं। अवलोकन का सही समय अमावस्या की रात हो सकती है क्योंकि इस दौरान हम कम चमकीले तारों को भी देख सकते हैं। इसके अलावा मध्य रात्रि का समय भी ठीक होता है क्योंकि तब तक धूल के कण भी नीचे बैठ जाते हैं। हमारे देश में मानसून के दौरान आकाश दर्शन में खासी परेशानी होती है। परंतु बारिश के बाद, जब आकाश धूल के कणों से रहित हो जाता है, तब आकाशीय पिण्डों को हम साफ देख सकते हैं। अतः आकाश दर्शन के इस समय को व्यर्थ मत जाने देना।

1. आकाश में क्या है?

आकाश में दिन के समय और रात के समय क्या–क्या दिखता है? चित्र बनाओ।

दिन के समय	रात के समय

2. तारा मण्डल

रात के समय आकाश में तारे, रोशनी के छोटे–छोटे बिन्दुओं–से नजर आते हैं। यदि हम बहुत पास–पास वाले कुछ तारा समूहों को देखें, तो हमें उनमें कुछ छवियां दिखेंगी। तारों के ये समूह तारा मण्डल कहलाते हैं। आओ हम कुछ तारा मंडलों की पहचान करते हैं। इस दौरान हम इनमें कुछ छवियां देखने का भी प्रयास करें। सप्तऋषि मण्डल और काश्यपि भी दो अलग–अलग तारा मण्डल हैं। इन दोनों तारा मंडलों की सहायता से हम ध्रुव तारे की पहचान करेंगे। हमने जिन तारा मंडलों की खोज की है उनके तारे देखने में पास–पास लगते हैं लेकिन वास्तव में हैं बहुत दूर–दूर।

अ. सप्तऋषि– आकाश के उत्तरी भाग में देखेंगे तो हमें वर्गाकार सप्तऋषि मण्डल दिखेगा। (अप्रैल से जून तथा सितंबर से नवंबर महीने के बीच) अन्य महीनों में सप्तऋषि मण्डल तड़के (सुबह जल्दी) सूर्योदय से कुछ घंटों पहले दिखाई देगा। अंग्रेजी में इसका नाम ग्रेट बियेर यानी विशाल भालू है। इसमें ये सात तारे ढूंढो।

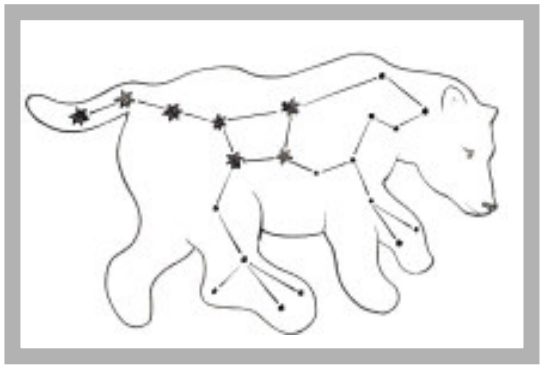

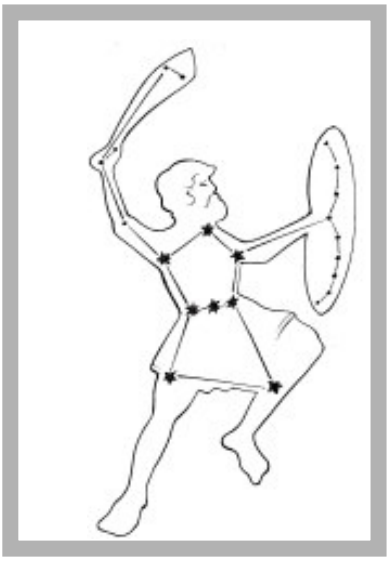

ब. ओरायन– यह यूनानी दंत कथाओं का एक मशहूर शिकारी है। बीच के तीन चमकते तारे उसकी बेल्ट है। जनवरी और फरवरी के महीने में रात्रि 9 बजे के आसपास यह हमारे सिर पर दिखाई देगा। दिसंबर से मार्च इसे देखने के सबसे अच्छे हैं।

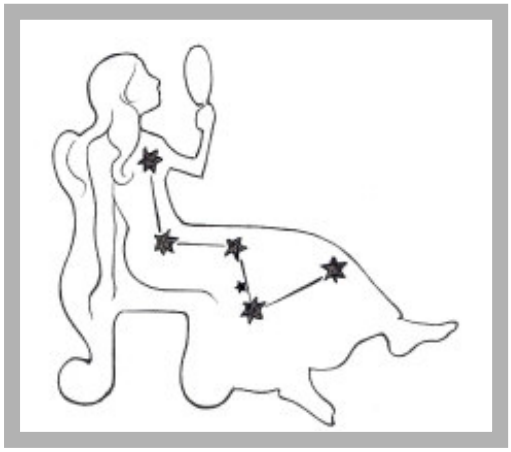

स. काश्यपि– यूनानियों को इन तारों के समूह में एक खूबसूरत और ताकतवर रानी कैसियोपिया, अपने सिंहासन पर बैठी दिखी। यह अक्टूबर से दिसंबर महीने के बीच उत्तर दिशा में दिखेगा। एक दिलचस्प बात यह कि रात में एक वक्त में या तो काश्यपि दिखेगा या फिर सप्तऋषि। दोनों एक साथ नहीं दिखते और इन्हीं के मदद से ध्रुव तारे की पहचान की जाती है।

द. **सिंह तारा मण्डल**– इन तारों के समूह में सिंह (शेर) की छवि दिखती है। यह राशि भी है। क्या आपको भी इसमें सिंह की छवि दिखी?

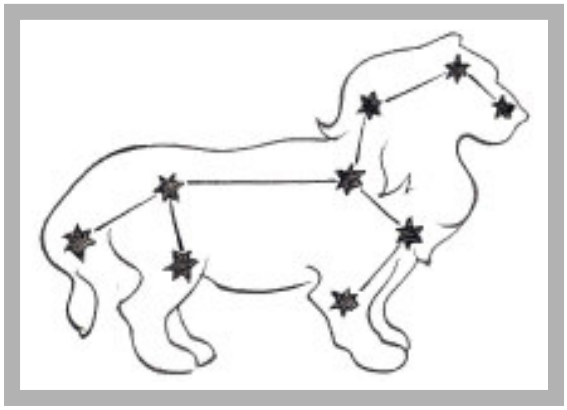

2. ध्रुव तारा

अक्सर जब दिशा पता करने की बात आती है, तो हम कहते हैं कि ध्रुव तारे से उत्तर दिशा पता कर सकते हैं। पर असल समस्या यह है कि रात्रि आकाश में असंख्य तारों के बीच ध्रुव तारे को पहचाने कैसे? कोई इसे सबसे चमकीला तारा बताता है, कोई इसे अन्य तारों से बड़ा कहता है, उसका रंग लाल चमकीला भी बताते हैं। कोई कहता है ध्रुव तारा चन्द्रमा के पास होता है, तो कोई कहता है यह उत्तर दिशा में होता है आदि।

इन सभी जवाबों के पीछे कोई ठोस आधार नहीं है। आओ हम रात्रि आकाश में ध्रुव तारे को पहचानें।

सप्तऋषि

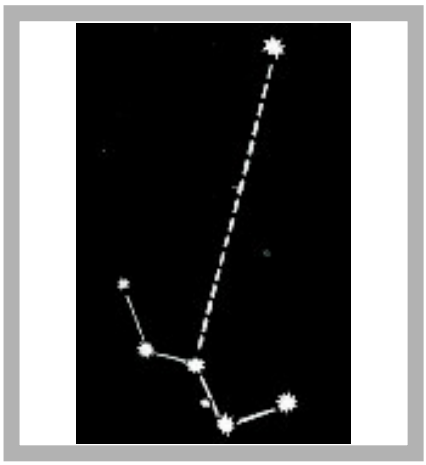

काश्यपि

ध्रुव तारे को पहचानने में सप्तऋषि और काश्यपि तारा मंडल हमारी मदद करेगा। इन दोनों तारा समूह की सहायता से हम ध्रुव तारे की पहचान कर सकते हैं। यदि आकाश में हमें सप्तऋषि मण्डल दिख रहा है, तो उसके वर्गाकार सिरों पर स्थित दो तारों से होकर गुजरने वाली काल्पनिक रेखा पर मिलेगा। (लगभग पांच गुणा दूरी पर) ये दो तारे पोइंटर तारे कहलाते हैं। यदि हमें काश्यपि दिख रहा है, तो ध्रुव तारा इसके मध्य से गुजरने वाली रेखा पर मिलेगा। (चित्रानुसार)

अ. आपको ध्रुव तारे की चमक कैसी दिख रही है?

क. एकदम झक सफेद   ख. मध्यम   ग. बहुत हल्की चमक

—————————————————————————————

ब. यह चन्द्रमा से कितना दूर है

—————————————————————————————

स. अन्य तारों से यह कितना बड़ा या छोटा है?

—————————————————————————————

द. कुछ रात्रि अवलोकन करके, बताओ अन्य तारों की अपेक्षा इसकी स्थिति में कोई परिवर्तन आता है या नहीं?

—————————————————————————————

य. काश्यपि में हमें अंग्रेजी के डब्ल्यू अक्षर की छवि दिखती है। सप्तऋषि मण्डल में किसकी छवि दिख रही है?

—————————————————————————————

4. ग्रह— रात्रि के समय आकाश में हमें हमारे सौरमण्डल के ग्रह भी दिखाई देते हैं। पर समस्या यह आती है कि हम इन्हें पहचाने कैसे? क्या आपको तारे और ग्रहों में भेद करना आता है?

—————————————————————————————

—————————————————————————————

हमारे सौरमण्डल के ग्रह, सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं जबकि तारों का अपना स्वयं का प्रकाश होता है। तारे हमसे बहुत दूर हैं इसलिए वे टिमटिमाते हुए दिखते हैं जबकि ग्रह टिमटिमाते नहीं हैं। ग्रह तारों की अपेक्षा हमारी पृथ्वी के अधिक नज़दीक हैं।

शुक्र ग्रह— यह सबसे आसानी से पहचान में आने वाला ग्रह है। फरवरी से जून महीने में शाम को सूरज डूबने के लगभग आधे घण्टे बाद पश्चिम दिशा में आकाश में देखो। हमें एक चमकीला तारा दूसरे तारों के दिखने से पहले हल्के अंधेरे में सबसे पहले दिखेगा।

अ. यह आपको किस दिशा में दिखाई दे रहा है?

—————————————————————————————

ब. इस तारे की चमक कैसी है?

—————————————————————————————

स. अन्य तारों से इसका आकार कैसा है?

—————————————————————————————

हमें जो तारा दिखाई दे रहा है वास्तव में वह शुक्र ग्रह है। यदि यह शाम को नहीं दिखे तो तड़के (सुबह जल्दी) इसे देख सकते हैं। सुबह का सबसे उजला तारा हमें पूर्व दिशा में दिखेगा।

अ. शुक्र ग्रह को सांझ का तारा व भोर का तारा क्यों कहते हैं?
———————————————————————————————

ब. जून 2012 में शुक्र ग्रह चर्चा में रहा। पता करों क्यों रहा?
———————————————————————————————

शुक्र ग्रह की चमक के आगे न कोई तारा टिक पाता है ना कोई ग्रह। सूर्य और चांद के बाद पृथ्वीवासियों के लिए आसमान का सबसे उजला पिण्ड यही है। रात्रि आकाश में अन्य ग्रहों को पहचानने की कोशिश करो। (वे तारो जो टिमटिमाते हैं और वे जो नहीं के आधार पर)

बुध : इसको आसानी से पहचानना मुश्किल है क्योंकि यह हमेशा सूर्य के नजदीक रहता है। यह सूर्योदय से एकदम पहले या सूर्यास्त के एकदम बाद कुछ समय के लिए दिखता है।

मंगल : रात्रि आकाश में यह लाल रंग का सा दिखता है।

बृहस्पति : यह एक चमकीला ग्रह है। एक छोटी दूरबीन की सहायता से इसके चन्द्रमाओं को भी देखा जा सकता है।

शनि : यह पीले रंग का दिखता है। इसके खूबसूरत छल्ले छोटी दूरबीन की सहायता से देखे जा सकते हैं।

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्य करते हैं।

श्रद्धांजलि

शिक्षा जगत के देदीप्यमान नक्षत्र, शिक्षा पुरोधा अनिल बोर्दिया दिनांक 2 सितंबर, 2012 को इस संसार से हमेशा के लिए विदा हो गए। उनके चले जाने से भारतीय शिक्षा जगत में एक रिक्तता आ गई है, जिसे भर पाना असंभव है। अनिल बोर्दिया चाहे आज हमारे बीच नहीं हैं, मगर उनके द्वारा शिक्षा में दिए गए योगदान को हमेशा याद किया जाता रहेगा।

5 मई, 1934 को शिक्षाविद् श्री केसरीलाल बोर्दिया के घर जन्मे श्री अनिल बोर्दिया की प्रारंभिक शिक्षा विद्या भवन स्कूल, उदयपुर में हुई। आप 1957 बैच के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी बने। 1987 से 1992 तक आप भारत सरकार के शिक्षा सचिव रहे। आपका स्कूल पूर्व बाल–शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, महिला शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं बिहार शिक्षा प्रोजेक्ट में अविस्मरणीय योगदान रहा है। 1987 में राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण करने की दिशा में, आपने शिक्षाकर्मी योजना की पहल करके बड़ी उपलब्धि प्राप्त की। आप भारत सरकार की 'नई शिक्षा नीति 1986' समिति के सदस्य सचिव भी रहे।

आमजन की शिक्षा में रुचि होने से, सेवानिवृति के बाद भी आपने राजस्थान में लोक जुम्बिश और दूसरा दशक कार्यक्रम शुरू कर, वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोग किए। शैक्षिक विकास में आपकी अहम भूमिका के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, यूनेस्को द्वारा 1999 में आपको पुरस्कृत किया गया। दक्षिण अफ्रीका की शिक्षा नीति के निर्माण के संबंध में 1994 में नेलसन मंडेला ने आपको दक्षिण आफ्रीका आमंत्रित किया। आप नाईजीरिया और दक्षिण अफ्रीका के शैक्षिक सलाहकार भी रहे। शिक्षा के अधिकार (आर.टी.ई.) कमेटी के प्रमुख रहते हुए आपने शिक्षकों की दक्षता बढ़ाने और 25 प्रतिशत वंचित और गरीब बच्चों को निजी स्कूलों में प्रवेश दिलाने का महत्वपूर्ण सुझाव दिया था।

आपके द्वारा शिक्षा में सतत रूप से दिए गए योगदान के लिए 2010 में भारत सरकार ने आपको पदम भूषण के अलंकार से नवाजा। विद्या भवन अपने इस मनस्वी को कभी भुला न पाएगा। आपका विलक्षण व्यक्तित्व, हमें शिक्षा के विकास के लिए सदैव प्रेरणा देता रहेगा।

आपके निधन के समाचार से विद्या भवन परिवार के सदस्य स्तब्ध रह गए। विद्या भवन परिवार आपको अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए, ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे, शोक संतप्त परिवारजन को यह आघात सहने की शक्ति प्रदान करे।

5 सितम्बर 2012 से नए रूप में

शिक्षकों का ई-मंच : टीचर्स ऑफ इण्डिया

शिक्षक हमारी शिक्षा व्यवस्था के हृदय हैं। शिक्षा को अगर बेहतर बनाना है, तो शिक्षण सामग्री और शिक्षण विधियों के साथ–साथ शिक्षकों को भी इस हेतु पेशवर रूप से सक्षम तथा बौद्धिक रूप से सम्पन्न बनाए जाने की ज़रूरत है। इसके लिए हर स्तर पर तरह–तरह के प्रयास किए जा रहे हैं। टीचर्स ऑफ इण्डिया पोर्टल ऐसा ही एक प्रयास है। गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की प्राप्ति के लिए कार्यरत अज़ीम प्रेमजी फाण्डेशन ने इसकी पहल की है। वर्ष 2008 में शिक्षक दिवस पर इसका शुभारम्भ किया गया था। यह बहुभाषी पोर्टल राष्ट्रीय ज्ञान आयोग द्वारा प्रस्तावित एवं समर्थित है। पिछले लगभग तीन साल में प्राप्त प्रतिक्रियाओं, सुझावों तथा अनुभवों को ध्यान में रखकर इसे और अधिक सुगम और सहज बनाने का प्रयास किया गया है। यह निशुल्क है तथा हिन्दी, कन्नड़, तमिल, तेलुगू तथा अंग्रेजी में इस www.teachersofindia.org ई–पते पर उपलब्ध है।

टीचर्स ऑफ इण्डिया है शिक्षक मंच

Teachers of India ऐसा मंच है जहां शिक्षक पेशेवर क्षमताओं को बढ़ा सकते हैं। शिक्षक इस मंच पर–

- विभिन्न विषयों, भाषाओं और राज्यों के शिक्षकों से संवाद कर सकते हैं। अपने शैक्षणिक जीवन के किसी भी विषय पर अपने विचार रख सकते हैं।
- विभिन्न शैक्षणिक विधियों और उनके विभिन्न पहुलओं पर अपने विचारों, अनुभवों का आदान–प्रदान कर सकते हैं। वे शिक्षण विधियों, स्कूल के अनुभवों, आजमाए गए शैक्षिक नवाचारों या नए विचारों पर लिख सकते हैं।
- विभिन्न स्तम्भों के माध्यम से टीचर्स ऑफ इण्डिया पर भागीदारी कर सकते हैं।
- विभिन्न शैक्षिक विषयों, मुद्दों पर लेख, शिक्षा नीतियों से सम्बन्धित दस्तावेज, शैक्षणिक निर्देशिकाएं, मॉड्यूल्स आदि टीचर्स ऑफ इण्डिया से सीधे या विभिन्न लिंक के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

टीचर्स ऑफ इण्डिया है आप सबके लिए

शिक्षक–शिक्षा में संलग्न संस्थाओं, शिक्षा विभाग, स्कूल शिक्षा के प्रशासक और विश्वविद्यालयों से भी टीचर्स ऑफ इण्डिया का उतना ही सरोकार है जितना शिक्षकों का। टीचर्स ऑफ इण्डिया का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब अधिक–से–अधिक इसमें भागीदारी करें।

यदि आप किसी भी रूप में टीचर्स ऑफ इण्डिया से जुड़कर रचनात्मक काम करना चाहते हैं तो कृपया हमें लिखें या ईमेल करें। आपका स्वागत है।

अजीम प्रेमजी फाण्डेशन, #134, डूड्डाकन्नेली, विप्रो कारपोरेट ऑफिस के बाज में, सरजापुर रोड, बंगलौर
560 035
Email-teachers@azimpremjifoundation.org